52-60

सहज–वाणी

भाग–६

प्रकाशक

एवं

प्राप्ति-स्थल

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
मोटेरा आश्रम, साबरमती
जिला–गांधीनगर, अहमदाबाद

मकरसंक्रांति (उत्तरायण) मुल्य १–२५
१४ जनवरी १९७७ संवत् २०३३

निवेदन

मनुष्य मात्र आनन्द का इच्छुक है। हर कार्य मनुष्य का आनन्द की इच्छा से प्रेरित है; परन्तु सब कुछ करते हुएभी जिस आनन्द को मनुष्य चाहता है, हम देखते हैं कि वह सच्चा आनन्द उसे मिल नहीं पाता और वह दुःख के बार बार थपेड़े खाकर निराश हो जाता है।

यदि हम भी अपने आपको ऐसी हो स्थिति में पाते हैं, तो स्वामीजी की अमृतमय मधुर वाणी को श्रवण करने और आत्मिक शान्ति का लाभ लेने हेतु आपको हार्दिक आमंत्रण है। यदि यहाँ नहीं पधार सकते तो यह भी सुविधा की गई है कि स्वामीजो की अमृतवाणो किसी भो प्रकार आप तक पहुँचे और उसी रूप में 'सहजवाणी' ग्रन्थमाला का यह छठा पुष्प आपके हाथों में शोभायमान् हो रहा है।

यह संकलन स्वामीजी के मुखारविन्द से सहज प्रसृत् अमृत-वाणो को लिपिबद्ध करने का अल्प प्रयास है।

स्वामीजी के तपस्वो जोवन को हिमालय की गहनता, नर्मदा का पवित्र तट और आबू की गह्वर गुफाओं का वर्षों का सान्निध्य मिला हुआ है। अतः यह वाणी, मात्र वाणी ही नहीं है, अपितु इसमें हिमालय के बर्फीले शीतल-शांत और पवित्र परमाणु, नर्मदा का पावन प्रवाह और आबू की शुद्ध तात्त्विक हवा का आध्यात्मिक ओज सन्निहित है।

आशा है, यह अमृतवाणो आपके लिये आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक बनेगी।

—निवेदक

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

जीवन-झलक

परमपूज्य संत श्री आशारामजी महाराज का जन्म सिन्ध प्रान्त के बेराणा गाँवमें १७ अप्रेल १९४१ को सुप्रतिष्ठित नगरसेठ श्री थाहुमल सीरुमलानी के पवित्र गृह में हुआ था। पूज्य श्री के जन्म मात्र के तुरन्त पश्चात् ही कई अलौकिक घटनाएँ घटी और कुटुम्ब की समृद्धि व सुख-शान्ति में भी अभूत-पूर्व वृद्धि होने लगी। 'पूज्यश्री' के बालपन के हाव-भाव एवं तेजोमय मुखमण्डल को देखकर तीन वर्ष की अवस्था में ही उनके कुलगुरु ने भविष्यवाणी कर दी थी कि 'यह बालक भविष्य में महान् संत बनकर कई लोगों को जन्म-मरण के कष्टों से छुड़ाएगा।'

भगवान बुद्ध की तरह ही संसार के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ माने जाने वाले सुख भी स्वामीजी को आकर्षित नहीं कर सके। वे शीघ्र ही सांसारिक विषयों से उपराम हो उठे और उन्होंने बीहड़ जङ्गलों व पहाड़ों का रास्ता लिया। लम्बे ७–८ वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् पूज्यश्री ने अपनी मंजिल प्राप्त की अर्थात् आत्मसाक्षात्कार किया और जिस आत्मिक आनन्द को वे प्राप्त हुए उसीका पान आज साबरमती नदी के किनारे 'संत आशाराम आश्रम (मोटेरा गाँव के पास) में आए हुए जिज्ञासु भक्तों को करा रहे हैं।

—आत्मज्ञान—

कर ध्यान अपनी याद कर, तू एक देव अनन्य है ।
तू एक अपना आप है, तेरे सिवा ना अन्य है ॥
तू एक ही सन्मात्र है, चिन्मात्र है, सुखमात्र है ।
तू आप अपना भूल कर, अपनो दया का पात्र है ॥

ॐ ॐ ॐ

यह ज्ञान जिसने पा लिया, उसने सभी कुछ पा लिया ।
जिसने न पाया ज्ञान उसने, जन्म लेकर क्या लिया ॥
माता पिता को कष्ट दीन्हा, कष्ट पाया आप भी ।
जिससे मिला उसको रुलाया, मूढ़ रोया आप भी ॥

विषय–सूची

		पृष्ठ
१	सत्संग महाधर्म है ।	१.
२	ऐसे संतों को कीर्ति की परवाह नहीं होती बल्कि कीर्ति उनके पीछे-पीछे चलती है ।	२६
३	पतन से आत्मिक उत्थान् की ओर.... ।	४३
४	यह पूजा देह की पूजा नहीं है ।	४७
५	सबको आत्म-भाव से देखो !	६७
६	क्या करें कि शीघ्र आत्मज्ञान हो जाए ?	७२
७	हम हर हाल में मस्त रहें !	८३
८	संगति कीजे सन्त की हरे ओर की व्याधि ।	८७

ॐ

सत्संग महाधर्म है—

२७-७-१९७६, मंगलवार
मणीनगर (अहमदाबाद)

शाम के पाँच बज रहे हैं । श्री स्वामीनारायण मन्दिर का सत्संग भवन भक्तों द्वारा बड़े यत्न से सजाया गया है । पुष्पों एवं रंग बिरंगे बिजली के बल्बों से सजे हुए एक ऊँचे आसन पर स्वामीजी विराजमान् हैं । जिज्ञासु श्रोताओं से भरे विशाल भवन में अपूर्व शांति छाई हुई है ।

स्वामीजी— मनुष्य के स्थूल शरीर को चलाने के लिए जैसे रोटी-पानी और हवा अति आवश्यक है, वैसे ही मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिये सत्संग आवश्यक है । यदि सत्संग का समावेश जीवन में नहीं है तो मनुष्य का जीवन जीवन कहलाने के लायक नहीं रहता । जीवन क्या है ? शरीर को पाला पोसा, बड़ा किया और मर गये, यह जीवन-जीवन नहीं है । यह स्थूलवादियों, जड़-वादियों के लिये भले ही जीवन हो, परन्तु यह वास्तविक जीवन नहीं है । जीवन वस्तुतः कुछ और ही है । जीवन जीवत्व से ब्रह्मत्व

की ओर विकास की प्रक्रिया है। (एक गुलाब का पुष्प हाथ में लेकर) यह गुलाब का पुष्प है । इसके भीतर एक ऐसी चैतन्य-सत्ता है जिसके कारण यह महक रहा है । उस सत्ता का यदि इसमें से बाद कर दिया जाय तो यह पुष्प पुष्प नहीं रहेगा । वैसे ही मनुष्य के जीवन में से उसके अन्दर छिपी उस आध्यात्मिक ऊर्जा का (आध्यात्मिक महक का) बाद कर दिया जाय तो उसका वह जीवन जीवन नहीं कहलाएगा । जीवन का सार्थक्य इसीमें है कि अपने में मनुष्य अपने उस अमरत्व, उस चैतन्य तत्व, उस ईश्वरत्व की अनुभूति कर ले, अपने आपको पहचान ले । यह तभी संभव है जब मनुष्य अपने हृदय की शुद्धि कर ले । अशुद्ध हृदय में ईश्वर का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता । और हृदय की शुद्धि बिना सत्संग के हो नहीं सकती । मनुष्य हृदय की शुद्धि की तरफ ध्यान नहीं देवें और भले दुनियाँ के कितने ही वैषयिक सुख के साधन इकट्ठे कर ले, कितने ही सुविधा के साधन संचय कर ले; परन्तु सुखी नहीं हो सकता । क्षणिक सुख के साधनों से सम्पन्न होते हुए भी उसका जीवन जीवन कहलाने के लायक नहीं रहेगा । इन साँसारिक उपलब्धियों के बावजूद वह दुःख से निवृत्त नहीं हो सकता । दुःख से निवृत्ति तो उसकी तभी हो सकेगी जब वह अपने मूल स्वरूप को पहचानेगा, अपने आत्मस्वरूप को जान लेगा—

'तरति शोकं आत्मवित् ।'

आत्मा को जानने वाला शोक को तर जाता है । उसे कोई दुःख प्रभावित नहीं कर सकता । उसके चित को कोई भी दुःख चलायमान नहीं कर सकता ।

गीताकार श्री कृष्ण कहते हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

(अध्याय–६)

'....परमेश्वर की प्राप्तिरूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत्प्राप्तिरूप जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता है ।'

तो हमारे वास्तविक जीवन का लक्ष्य हमें ऐसे लाभ को प्राप्त करने का रखना चाहिये जिसको पाने के बाद और कुछ पाना शेष न रहे, ऐसा सुख प्राप्त करनेका लक्ष्य रखना चाहिये जिस सुख को पाने के बाद और कोई सुख पाना शेष न रहे । तभी जीवन की सार्थकता-सिद्ध हो सकेगी, जीवन जीवन कहलाने के योग्य हो सकेगा ।

परन्तु यह आध्यात्मिक विचार, यह आत्मिक लक्ष्य बनाकर हम तभी चल सकेंगे जब हम सत्संग करेंगे, सत्संग को अपने जीवन में स्थान देंगे । यदि हमारे जीवन में सत्संग को स्थान नहीं है तो हम भटकते रहते हैं । हम सुख के लिये एक इच्छा

की पूर्ति करते हैं और उसकी जगह दूसरी इच्छा आ खड़ी होती है। दूसरी इच्छा की पूर्ति में लगते हैं कि तीसरी, चौथी उसकी जगह लेने के लिये वेटिंग लिस्ट में तैयार रहती हैं। सोचते हम यही हैं कि इसकी पूर्ति होगी तो सुख मिलेगा, परन्तु इच्छा पूरी भी हो जाती है, सुख मिलता नहीं; सुख का आभास मात्र होता है और पुनः हम सुख के लिये भटकना शुरू कर देते हैं। इस भटकन में ऐसा सुख कभी हमें मिलता नहीं कि जिसको पाकर हम अधिक भटकना बन्द कर दें, हम रुक जाएँ।

वास्तविक जीवन जिन्होंने जिया हैं, जिन्होंने अपने आत्म-स्वरूप को पहचाना है, वे कहते हैं—तुम जो ऐसा करेंगे तो सुख मिलेगा, अमुक वस्तु मिल जाय तो सुखी हो जाऊँगा—ऐसा सोचते हो तो वैसा नहीं है। तुम यदि उन वैषयिक वस्तुओंको मिलने में सुख मानते हो तो यह तुम्हारा भ्रम है। इन वासनाओं की इन आवश्यकताओंकी—इन इच्छाओंकी पूर्ति तुम्हें कभी वह अन्तिम सुख नहीं दे सकती।

इसको हम एक उदाहरण से समझें। जैसे हमको एक टेप रिकार्डरकी इच्छा हुई कि यह मिल जाय तो हमें सुख हो। जब जब यह टेप रिकार्डर की इच्छा का चिंतन हमें होगा-इसका अभाव हमें याद आयेगा तब तब हमें दुःख होगा, तब तब हमें असंतोष होगा। लेकिन जब हमारा ध्यान इस अभाव की ओर नहीं होगा

उस समय हमें यह दुःख नहीं होगा। जब यह अभाव याद आएगा तभी दुःखका अनुभव होगा। हमें नींद में, मूर्च्छा में दुःख नहीं होगा। टेप रिकार्डर का अभाव उस समय भी है, परन्तु हमें उस समय दुःख नही होता है क्योंकि उस समय उस अभाव का चिन्तन हमारे मनमें नहीं है, उस अभाव का स्मरण हमको नहीं है। यदि उस अभाव के कारण हमको दुःख होता तो इस समय भी होना चाहिये था, परन्तु नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि सुख या दुःख वस्तु के मिलने या न मिलने में नहीं है। उसके अभाव का जब मन चिंतन करता है उस पर निर्भर है, वस्तु के मिलने या न मिलने पर नहीं।

अब मान लो कि हमें टेप रिकार्डर मिल गया। तो हमको सुख का एक क्षणिक आभास मात्र हुआ, क्योंकि हमारी तृष्णामें से हमारी इच्छा में से टेप-रिकार्डर निकल गया, लेकिन हम ध्यान से देखें तो लगेगा कि उस टेप-रिकार्डर की जगह दूसरी वस्तु आ गई कि अब यह मिले तो सुखी होऊँ। तृष्णा खत्म नही हुई, वह परिवर्तित हो गई, उसने वेश बदल लिया। पहले टेप-रिकार्डर का वेश पहने थी अब उसने रेडियो सैट का वेश पहन लिया अथवा और कोई अन्य वस्तु का। अभाव वस्तु का वैसा ही बना हुआ है, वस्तु का स्वरूप भले ही बदल गया हो। तृष्णा का वेश बदलते समय प्रथम वस्तु की प्राप्ति के समय थोड़ा सा सुख का झलकारा, सुख का आभास मिला वह भी उस क्षण विशेष के लिये ही, परन्तु

सुख नहीं मिला। सुख की इच्छा वैसी ही बनी हुई है क्योंकि वस्तु का अभाव, भले ही वह दूसरी वस्तु हो बना हुआ है।

इन इच्छाओं के कारण ही हम दीन बने हुए हैं। हमारी मांगें सदैव रूप बदल बदल कर सामने आती जाती हैं। जड़मूल से कभी निकलती नहीं हैं। किसी भी मंदिर में हम गए, किसी भी संत के सम्मुख जाकर हम खड़े हुए कि हमारी इन इच्छाओं की लिस्ट हम उनके सामने कर देते हैं और दीन बन जाते हैं।

कोई कहता है, मुझे परमोशन मिल जाय तो सुखी हो जाउँ। कोई कहता है, एक सवा पाव मिट्टी (पुत्र) मिल जाय तो सुखी हो जाउँ; और ये इच्छाएँ क्या हम अभी कर रहे हैं? और जन्मों जन्मों में हम ये इच्छाएँ करते आए हैं। उनको पूरी भी करते आए हैं, परन्तु अभी तक हमें वह सुख नहीं मिला कि हम स्तब्ध हो जाएँ–रुक जाएँ। पुत्र जन्म हुआ तो भी क्या सुख मिलेगा? जन्मने पर उसकी जन्म–पत्री की चिन्ता, उसके ग्रह-नक्षत्र शुभ हैं या अशुभ इसकी चिन्ता, कुछ बड़ा हुआ–सर्दी, जुकाम, बुखार हुआ तो चिन्ता, पढ़ता नहीं है तो चिन्ता, पढ़ता है पर पास नहीं होता है तो चिन्ता, पास होता है तो उसको कुसंग तो नहीं लग रहा है इसकी चिन्ता, हमारी इच्छा के विपरीत कोई लाड़ी (लड़की) तो नहीं लाएगा, कहीं लव-मैरेज तो नहीं करेगा इसकी चिन्ता। फिर उसकी शादी की चिन्ता, फिर हमारे बुढ़ापे में वह हमारी सेवा करेगा कि नहीं इसकी चिन्ता। और हमने

प्रारंभ में सोचा क्या था कि यदि सवा पाव भर मिट्टी मिल जाय तो सुख हो! और सुख कहीं मिलता नहीं, चिन्ताएँ मिलती जाती हैं। सुख का आभास होता जाता है, सुख मिलता नहीं-उस रेगिस्तान के पानी की तरह जो वास्तव में होता नहीं है, केवल पानी का आभास देता है।

यह चक्र चलता रहता है। ऐसे में यदि कोई तत्वज्ञानी महापुरुष मिल जाय, कोई मार्ग बताने वाला मार्गदर्शक मिल जाय जो हमारी इच्छा पूर्ति की बजाय हमको वास्तविक स्थिति का ज्ञान करादे--हमें अपने आत्मस्वरूप की ओर ले जाय तो हम इस चक्र से छूट सकते हैं, अन्यथा नहीं।

भगवान ने हमें बुद्धि दी है तो उसका उपयोग बन्धन काटने में करें न कि बन्धन बढ़ाने में, हृदय को शुद्ध करने में करें न कि अशुद्ध करने में; और यह तभी हो सकता है जब हम सत्संग करें। परन्तु सत्संग में भी कई बार हम केवल सत्संग करते हैं बुद्धिपूर्वक उसका लक्ष्यार्थ नहीं लेते। जैसी हमारी भावना होती है, दृष्टि होती है वैसा ही हमें नजर आता है। जैसे हमने श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सुना और हमने श्री कृष्ण का ध्यान किया तो हमारा मन कृष्णाकार रूप धारण कर लेगा, हमारी वृत्ति कृष्णाकार बन जायेगी, हमें श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे; परन्तु वह श्री कृष्ण का माया-विशिष्ट चैतन्य होगा। सत्य स्वरूप का दर्शन नहीं होगा। उस माया-विशिष्ट चैतन्य का जब तक दर्शन होगा तब तक मन को

शान्ति मिलेगी, लेकिन ज्योंही दर्शन होना बन्द हुआ, हम वैसे के वैसे ही रह जाएंगे। पुनः अशांत हो जाएंगे; क्योंकि हमने सत्संग का लक्ष्यार्थ नहीं लिया। श्री कृष्ण की लीलाओं के पीछे, श्री रामकी लीलाओं के पीछे कुछ आध्यात्मिक संदेश होते हैं जिन को हम समझ नहीं पाते और भगवान के वास्तविक रूप को नहीं जानकर माया-विशिष्ट रूप को जानने में ही अपने लक्ष्य की इति-श्री समझ लेते हैं। यह सही अर्थों में सत्संग का हमें पूरा लाभ नहीं है।

सत्संग यानि क्या? सत्संग—यानि सत्य का संग। तीनों कालों:भूत-भविष्य-वर्तमान में अबाधित रूप से है, जो तीनों कालों मे विद्यमान है, जो सदैव है, वह है सत्य-उसका संग! जो नहीं है उसका संग नहीं। जैसे—मनुष्य के सिंह।

एक व्यक्ति बीमार पड़ा। वैद्य ने कहा, 'मनुष्य के सिंह लाओ। उनको घिसकर औषधि बनाएंगे।' तो एक व्यक्ति किसी गाँधी की दुकान पर सिंह लेने गया। गाँधी ने कहा—'सिंह नहीं हैं।' पहले थे और अब समाप्त हो गए हैं, बिक चुके हैं—ऐसा भी नहीं है। बाद में आएंगे तब आना तो मिल जाएंगे—ऐसा भी नहीं है। वे पहले नहीं थे, अब नहीं है और बाद में भी नहीं होंगे। वे होते ही नहीं हैं।

उसी तरह (पुष्प हाथ में लेकर) यह पुष्प पहले नहीं था, अभी है, परन्तु कुछ काल उपरांत नहीं रहेगा फिर भी अभी दीख रहा है। इसको कहते हैं 'मिथ्या'। ऐसे ही हमारा यह शरीर पहले नहीं

था, अभी है और बाद में नहीं रहेगा; पंचभूतों से बना उन्हीं में लीन हो जाएगा। यानि यह भी सत्य नहीं है, 'मिथ्या है'।

इन मिथ्या वस्तुओं में सत्य—बुद्धि करने के कारण ही हम दुःखी होते हैं। सत्संग से हमें विवेक होता है, हम निर्भय होते हैं। सत्संगी भय पर विजय प्राप्त कर लेता है और जो सत्संगी नहीं है, वह उस दूध वाले की तरह अपने ही भय से अपना नुकसान कर के दुःखी होता है।

एक काका थे—बड़े चतुर, तीक्ष्ण-बुद्धि। वे एक बार एक दूधवाले की दुकान पर जहाँ कड़ाई चढ़ी हुई थी, दूध पीने गए। निश्चित होकर गिलास भर कर मलाई वाला दूध पीया। परन्तु अब रुपया देना पड़ेगा तो काका को थोड़ी चिन्ता हुई। युक्ति करके काका बोले, "ऐसा रुपये का दूध होता है, फीका फीका सा? ठगते हो?" दूधवाला बोला, "काका, शक्कर तो डाली थी, परन्तु कम मीठा लगा हो तो यह लो, दो चम्मच शक्कर ऊपर से और फाँक लो।" काका ने शक्कर फाँक ली। दूधवाले ने सोचा, अब काका रुपये का नोट निकालेगा, परन्तु काका तो जैसे नशा चढ़ गया हो वैसे झूमने लगे खड़े होकर। उनके कमर के ऊपर वाला भाग दाएँ से बाएं और कभी बाएं से दाएं गोलाकार घूमने लगा। आँखें बन्द सी हो गई और काका कुछ बोले ही नहीं। दूधवाले ने पूछा- 'काकाऽऽ! काकाऽऽ!! क्या करते हो? रुपया निकालो!' परन्तु काका ने तो जैसे सुना ही नहीं। दूधवाले ने एक बार पुकारा,

दो बार पुकारा, चार बार पुकारा परन्तु काका तो आँखें ही नहीं खोले। अब दूधवाले ने सोचा, 'हो न हो, मेरे दूध में कोई विषैला जन्तु पड़ गया होगा जिससे दूध विषैला हो गया होगाऔरऐसा दूध पीने से काका को ऐसा असर हो रहा है। यदि काका ने कहीं यहींपर दम तोड़ दिया तो पुलिसवाले मुझे पकड़ ले जायेंगे और मेरा धंधा ....।' सोचते सोचते दूधवाला तो फुर्ती से उठा और अपनी दूध की कढ़ाई को तुरन्त गटर में खाली किया, उसको धो माँज कर ऊपर टांगा, दुकान बन्द करने की पूरी तैयारी की और दोनों हाथों से काका के कंधे पकड़ कर जोर से हिलाते हुए बोला, "अरे काकाऽऽ ! काका, कुछ बोलो तो सही, क्या हुआ ?" अब काका ने आँखें खोली और इत्मीनान से बोले, "मुझे कुछ भी नहीं हुआ। तुमने जो बाद में शक्कर मिलाई न, वह पेट के अन्दर दूध में ऐसे हिला रहा था।"

(श्रोतागण ठहाका मार कर हंस पडे)

सुनकर दूधवाले के तो हाथ के जैसे तोते उड़ गए। बोला "अरे काका ! तूने तो २ चम्मच शक्कर हिलाई, पर मेरा तो सारा दूध जमीन पर तूने हिलवा दिया !"

कुछ लोग अभी भी हँस रहे हैं। स्वामीजी हँसी शांत होने पर बोले —

यह तो दृष्टांत है। वेदान्त का सत्संग समझने के लिये बहुत

ध्यान देना पड़ता है। आप सब बहुत गंभीर हो गए थे। इसलिये थोड़ा विनोद के लिये काका को बीच में लाना पड़ा। तो कहने का मतलब यह है कि यदि सत्संग का हमारे जीवन में अभाव है तो हम मिथ्या वस्तुओं में ही सत्य-बुद्धि कर जाते हैं और भयभीत, चिन्तित तथा दुःखी होते रहते हैं।

आप में से ऐसा कोई नहीं होगा जिसने सपना नहीं देखा होगा। सपने में आप सेठ बनते हैं, नौकर बनते हैं, राजा बनते हैं, रंक बनते हैं, परन्तु सपना टूटा तो सब मिथ्या लगता है; क्योंकि सोने से पूर्व सपने का अस्तित्व था नहीं और जागने के बाद भी वह विलीन हो गया। यानि वह मिथ्या है। परन्तु उसमें यदि हमने सत्य-बुद्धि की, उसको सत्य माना जो कि वास्तव में सत्य नहीं है तो हम सुखी-दुःखी होंगे। सपने का जरा सा सुख और जरा सा दुःख हमें चलित कर देगा।

घर के एक कोने में एक बिस्तर पर व्यक्ति सपना देखता है। वह मणीनगर रेल्वे स्टेशन पर सेठ बना खड़ा है। उसे गाड़ी से कहीं जाना है। टिकट लेता है, गाड़ी आती है, धक्कम-धुक्का करके वह गाड़ी में बैठने का स्थान पाता है। अब इस समय चालू सपने में कोई उसे कहे कि अरे ! यह स्टेशन, रेलगाड़ी, टिकट चेकर आदि कुछ नहीं है। क्यों धक्का मुक्की करके दुःखी होते हो ? सब असार है, मिथ्या है। तुम्हीं ने सारे स्वप्न के संसार की रचना की है। तुम्हीं ने रेलगाड़ी, रेल्वे स्टेशन बनाया है।

तुम्हीं ने टिकट बेचा है, तुम्हीं ने खरीदा है। तुमही इस सबके सर्जक हो—मालिक हो, तुम्हारी ही सत्ता से यह सब हो रहा है; तो वह मानेगा क्या ? वह नहीं मानेगा, उस समय। यदि मानता तो उनके आघात प्रत्याघात से परे होकर साक्षीभाव में स्थित हो जाता। तो धक्का—मुक्की न करके फर्स्टक्लास में ही बैठता। वह कभी आपकी बात उस समय स्वीकार नहीं करेगा और धक्के खाकर दुखी होता रहेगा। परन्तु उसे आप जगादो नींद में से तो ! फिर सब स्वप्न का मिथ्यापन उसे समझ में आ जायगा। फिर उसका सुख भी मिथ्या है और दुःख भी मिथ्या।

सपने होय भिखारी नृप, रंक नाक पति होय।
जागे हानि न लाभ कछु, तिमि प्रपञ्च जिय होय॥
(संत तुलसीदासजी)

सपनेउ सिर काटे कोई,
बिन जागे दुःख दूर न होई।

हमने अपना जीवन सत्संग-मय नहीं बनाया, हमने खाने-पीने, ओढ़ने—पहरने, बच्चे पैदा करने और नींद लेने में ही सारा जीवन गुजार दिया तो यह जीवन क्या जीवन कहलाने के योग्य होगा ?

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।

यह सब तो लालिया कुत्ता भी जानता है। सुख मिला तो सुखी हो गए, दुःख पड़ा तो दुःखी हो गए। यह कोई वास्तविक

जीवन नहीं है। ईंट—पत्थर का ज्ञान, पैसे कमाने का ज्ञान—यह सब ज्ञान बौद्धिक ज्ञान है, लौकिक-व्यावहारिक ज्ञान है। आध्यात्मिक नहीं है। यह गुलाब है। मित्रों ने कहा-यह गुलाब है, पड़ौसी ने कहा—यह गुलाब है, स्कूल में मास्टरजी ने कहा-यह गुलाब है। इसमें रंग है, इसमें खुशबु है। इस गुलाब के बारे में हमें इतना ज्ञान है, क्या यह वास्तविक ज्ञान है ? नहीं, यह भी वास्तविक ज्ञान नहीं है।

आँख, नाक, हाथ आदि इन्द्रियों से हम किसी वस्तु को जाँच कर हम बुद्धि से उसके बारे में निर्णय ले लेते हैं, यह बाह्य ज्ञान है। और गहराई से देखें तो यह गुलाब-कुछ मिट्टी, कुछ हवा, कुछ पानी, कुछ आकाश और कुछ तेज से बना है। इस प्रकार उसके तत्वों को जानना, यह विज्ञान (विशेष—ज्ञान) है। परन्तु इससे भी आगे मन—इन्द्रियों से परे उसके वास्तविक शुद्ध चैतन्यस्वरूप को जानना, यह है आध्यात्मिक ज्ञान। इस शुद्ध चैतन्य स्वरूप को जानना, अपने आत्मस्वरूप को जानना यह योग और वेदान्त द्वारा संभव है। इसीलिए श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥
(गीता अ. ६.)

'क्योंकि योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और शास्त्र के ज्ञान वालों से भी श्रेष्ठ माना गया है तथा सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन! तू योगी हो।'

और आगे श्री कृष्ण कहते हैं–

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

'और हे प्यारे! सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान् योगी मेरे में लगे हुए अन्तरात्मा से मेरे को निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।'

भगवान कहते हैं, ऐसा योगी जो ऐक्य भाव से निरन्तर अन्तरात्मा से मुझे भजता है, वह मुझे परम प्रिय है।

जनक परम योगी थे, मदालसा परम योगी थी, शिखरध्वज (योगवाशिष्ठ) परम योगी थे। ये योगी अपने आत्मस्वरूप में स्थित हुए थे, अर्थात अभेदभाव से स्थित थे, ईश्वरत्व को अपने से भिन्न नहीं देखते थे।

हम श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हैं और श्रीकृष्ण के दर्शन हो गए तो क्या होगा? यदि हमारे मन में क्षुद्र वासनाएँ हुई और हमने क्षुद्र पदार्थ भगवान से मांगे तो भगवान से वे पदार्थ हमें मिल जाएँगें और भगवान से पुनः वियोग हो जायेगा। यह तो परमभक्ति नहीं हुई। श्री कृष्ण अर्जुन के रथ पर साक्षात् विराजमान् थे, परन्तु अर्जुन का मोह दूर नहीं हुआ। तब भगभान ने अपना विश्वरूप का दर्शन अर्जुन को कराया; फिर भी

अर्जुन का भय दूर नहीं हुआ। आखिर तात्विक उपदेश से हो अर्जुन का मोह, भय और संशय आदि दूर हुआ और तब वह बोला–

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥७३॥

(गीता अ. १८)

'हे अच्युत (भगवान)! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, इसलिये मैं संशय रहित हुआ स्थित हूँ और आपकी आज्ञा पालन करूँगा।'

जब अर्जुन को भगवान का सान्निध्य था, उनकी बाह्य आकृति दिखती थी तब तक तम–मोह नहीं गया था। क्योंकि जो दिखेगा वह अदृश्य होगा ही।

'यद्दृश्यं तद् अनित्यम्'

जो दीखता है वह लोप होगा, जो मिलेगा वह बिछुड़ेगा, जिसका संयोग होगा उसका वियोग होगा और जो उत्पन्न होगा वह लीन होगा ही। वह भले आज हो अथवा वर्षों बाद। और जिसके मिलने से सुख मिला है उसके बिछुड़ने से फिर दुःख होगा ही। अतः जो अखण्ड है, सत्य है, अजर-अमर निर्विकार है, वह आत्म तत्व, वही हमारा आत्मस्वरूप है, उसे ही जानना है, उसीमें स्थित होना है। वही परम आनन्द का भण्डार है। उसका कभी वियोग होता नहीं। उसी को जानने का परम कर्त्तव्य, परम पुरुषार्थ करने की प्रेरणा हमें सत्संग देता है। सत्संग के इसी

लक्ष्यार्थ की तरफ हमारा ध्यान होना चाहिये। उसको जानने के लिये, तत्वदर्शी महापुरुषों को हम ढूँढे। वे महापुरुष बड़े पुण्य वानों को मिलते हैं, थोड़े पुण्य वालों को नहीं–

'स्वल्प पुण्याम् अरे राजन् विश्वासो नैव जायते।'

थोड़े पुण्य वालों को मिल भी गए तो उनका उन महापुरुष के प्रति श्रद्धा और विश्वास टिकेगा नहीं। यदि ऐसे महापुरुष नहीं मिले तो गीता, श्रीमद्भागवत, पंचदशी, योगवाशिष्ठ, पक्षपातरहित अनुभव प्रकाश, विचारसागर जैसे ग्रंथों को पढें। वे ही आपको सत्संग का लाभ देंगे।

सत्संग हमें बताता है, महापुरुष हमें बताते हैं कि हमारे भीतर एक ऐसा चेतन तत्व है जिसको पापी से पापी व्यक्ति भी यदि पहचानने का प्रयास करे तो वह रत्नाकर जैसे डाकू से आद्यकवि महर्षि वाल्मीकि जैसी महान् विभूति बन सकता है। हम मंदिरों में, देवताओं के सामने दीन बनते हैं छोटी छोटी वासनाओं को लेकर और अपने उस आत्म तत्व को पहचानने की तरफ ध्यान नहीं देते। मूल को छोड़कर पत्तों की तरफ ध्यान देते हैं। अरे, मूल (जड़) को ही पकड़ें न स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे–

**"यह कौनसी उकदा है, जो वह हो नहीं सकता ?
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता ?
कीड़ा जरा सा और वह पत्थर में घर करे,
इन्सान क्यों न वह दिले दिलवर में घर करें ?"**

मनुष्य हिम्मत करें तो क्या नहीं हो सकता ? छोटा सा कीड़ा पत्थर में घर कर लेता है तो प्रेम-स्वरूप ईश्वर में मनुष्य क्यों नहीं मिल सकता ? और वह (ईश्वर) दूर नहीं है। वह तो हमारे इतना नजदीक है कि जितना कोई नहीं। समुद्र की तह से उठकर ऊपर आने वाले बुदबुदे की जिगरी जान उसका अधिष्ठान समुद्र है। पानी की लहर का अधिष्ठान भी समुद्र है। इसी प्रकार हमारा हर एक संकल्प, हमारा हर एक विचार उस सच्चिदानन्द घन से उठता है। यह संकल्प उठाने वाली तृष्णा-यह जगदाकार वृत्ति इसको यदि हम ब्रह्माकार वृत्ति में बदल दें तो दुःख कहाँ है ? ढूँढने से भी नहीं मिलेगा वह। लहर यदि कहे कि मुझे समुद्र को ढूँढना है, उससे मिलना है तो उसका कहना सार्थक है क्या? अरे, वह स्वयं ही समुद्र है ! समुद्र तो उसकी रग-रग में समाया हुआ है। केवल उसे अपना लहर भाव छोड़ने की आवश्यकता है। ऐसे ही ईश्वरत्व (ब्रह्म) हमारी रग–रग में समाया हुआ है। केवल हमारा जीवभाव त्यागने की जरूरत है।

हम ही अपनी ओर देखते नहीं और उसको बाहर ढूँढते हैं। अपने मन से ही संसार बनाते हैं। कहाँ है संसार ? वह है ही नहीं। न वह कभी बना है न कभी बिगड़ेगा। सर्वत्र ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। कुछ वर्ष पूर्व कहाँ था पाकिस्तान ? मनुष्य के दिमाग में, नेताओं के दिमागमें रेखाएँ बनी पाकिस्तान की। प्रकृति तो वैसे ही स्थित है। नदियाँ वहीं की वहीं हैं।

पहाड़ वहीं के वहीं हैं, मरुस्थल वहीं का वहीं है। हमारी कल्पनाओं में भाग पड़े हैं। हमारी कल्पनाओं में सीमा रेखाएँ बनो हैं। उधर ईश्वर सृष्टि में कहीं कुछ नहीं है। हम ही अपनी कल्पनाओं में जीते हैं। भूखण्ड कभीं कुछ नहीं कहता। हम ही कहते हैं–यह हमारा देश है। पहले राजाओं ने कहा-यह हमारा देश। फिर मुसलमान आए, उन्होंने कहा–यह हमारा देश। फिर अंग्रेज आए, उन्होंने कहा–यह हमारा देश और अभी नेता और जनता कहती है–हमारा देश। देश कभी नहीं कहता कि मैं किसका हूँ? दुनियाँ के सभी झगड़े, खून–खराबियाँ, मनुष्यता पर कलंक लगाने वाले कृत्य मनुष्य की अपनी मानसिक विकृति के ही परिणाम हैं।

तो देश कभीं नहीं कहता कि मैं किसका हूँ। वह तो वहीं का वहीं स्थित है। मेरा-मेरा कहने वाले चले गए। यदि देश को पूछे तो वह कहेगा–"हाँ। ऐसा 'मेरा–मेरा' कहने वाले थे। बहुत आए-चले गए। कोई नहीं रहा। उन सबकी हड्डियों का भी पता नहीं। वे भी गल गई।"

बाहर का बहुत कुछ हम जानते हैं, दूसरों के बारे में हम बहुत जानते हैं, परन्तु अपने बारे में हम कुछ भी नहीं जानते। पहले जो ५ वर्ष के बालक जानते थे–इसी प्राचीन भारत में, वह आज ८०-८० वर्ष के बूढे भी नहीं जानते। क्यों कि हम सब इन्द्रियों में रमते हैं जब कि वे अपने स्वरूप में रमते थे।

स्वामी विवेकानन्द एक कुए के मेंढ़क का उदाहरण देते थे। एक कुए में एक समुद्र का मेंढ़क आ पहुँचा तो कुए के मेंढ़क ने

एक छलांग लगाई और पूछा-'इतना बड़ा है समुद्र तुम्हारा?' समुद्री मेंढक ने 'कहा-नहीं, वह तो बहुत बड़ा है।' कूप के मेंढ़क ने दूसरी छलांग और लम्बी लगाई और पूछा–'इतना बड़ा?' समुद्री मेंढक बोला–'नहीं, इससे तो बहुत बड़ा है।' इसबार उस मेंढ़क ने बहुत लम्बी छलांग लगाई और फिर पूछा–'क्या इतना बड़ा है? इससे बड़ा तो क्या होगा?' लेकिन समुद्री मेंढक बोला-'नहीं भाई, इसकी और समुद्र की क्या तुलना? समुद्र तो इससे बहुत बड़ा है!' परन्तु वह कूप मंडूक-वह कुए का मेंढक हार मानना नहीं चाहता था। उसने अपने शरीर की सारी शक्ति इकट्ठी की और इस बार कुए में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पूरा जोर लगा कर छलांग लगाई; फिर सीना फुलाकर बोला–'इतना बड़ा तो तुम्हारा समुद्र भी नहीं होगा।' परन्तु समुद्री मेंढक ने कहा–'नहीं, इसका और समुद्र का मुकाबिला ही क्या है?'

ऐसा वह कूप मण्डूक था। हम भी उसी के नजदीक के भाई हैं। हम भी अपने छोटे से बनाए हुए वैषयिक संसार में रहते हैं, उसी में सुख मानते हैं, इसीकुए को अपना सारा संसार समझ कर जी रहे हैं, जीवन में एन्द्रिक सुखों को ही सर्वोत्तम महत्व दिये हुए हैं, और जो अखण्ड आनन्द का भण्डार अपना आत्मस्वरूप है उसको जानने का प्रयास नहीं करते। अपना एक छोटा-मोटा बँगला बना लिया, एक दो कारें रख ली, एक दो फेक्ट्री के मालिक हो गए, कुछ नौकर-चाकर रख लिये और अपने आपको उस कुए के मेंढक की तरह सीना फुला कर ऐंठ गए कि 'हम कुछ हैं।'

एक बार स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती एक सेठ के घर गए। सेठ ने उनको अपना भवन बड़े उत्साह से दिखाया और बोला कि इसमें एक करोड़ रुपये की सजावट है। उस भवन के एक कमरे में जगत के मानचित्र वाला एक ग्लोब रखा था। स्वामीजी ने उसकी ओर संकेत कर सेठ से पूछा–'इसमें भारत कहाँ है?

सेठ ने बता दिया।

उन्होंने फिर पूछा–'बम्बई कहाँ है?'

सेठ ने बम्बई के स्थान पर एक छोटा सा बिन्दु उनको दिखला दिया।

उन्होंने फिर पूछा–'इसमें आपका भवन कहाँ है?'

तब सेठ बोला–'मेरा भवन तो केवल बम्बई के एक बड़े प्रांतीय मानचित्र में भी नहीं होसकता तो इस ग्लोब में कहाँ होगा?'

स्वामी अखण्डानन्दजी कहते हैं कि आपको आपका शरीर भले ही बहुत महत्वपूर्ण लगे। आपको लगे कि आप बहुत सुन्दर, धनी, बलवान्, विद्वान् अथवा प्रतिष्ठित हैं; किन्तु भारत में आपकी देह का क्या स्थान है? परिपूर्ण परमात्मा की दृष्टि से लें तो भारत तो क्या, पृथ्वी की ही लम्बाई-चौड़ाई-तौल शून्यप्रायः है। उस ग्लोब में तो भला बम्बई के लिए एक बिन्दु भी है, किन्तु अनन्त आकाश में तो पृथ्वी का बिन्दु भी नहीं है।

फिर भी हम अपने आप को बहुत कुछ समझने लग जाते हैं! हम अपने जीवन में सत्संग को स्थान नहीं देते और इन्हीं तुच्छ

चीजों के संग्रह में अपना सारा जीवन खपा देते हैं जबकि वह सब स्थायी भी नहीं है, एक दिन छूटने वाला है। उसमें से कुछ भी हम अपने साथ नहीं ले जा सकेंगे—

पड़ा रहेगा माल खजाना
छोड़ त्रिया-सुत जाना है।
खिला पिला कर देह बढ़ाया
वह भी अगन जलाना है।
कर सत्संग अभी से प्यारे
नहीं तो फिर पछताना है।

जिसको मेरा कहता हूँ, वह मैं नहीं हूँ और जिसको मैं कहता हूँ, वह मेरा नहीं हो सकता। जो मेरा है, वह मुझ से छूट जाएगा और जो मैं (आत्म तत्व) है वह कभी छूट नहीं सकता। मैं कभी मेरा नहीं हो सकता और मेरा कभी मैं नहीं हो सकता।

इस शुद्ध 'मैं' को-अपने आत्म-स्वरूप को ही पहचानना है। 'मेरा' छोड़ना ही पड़ेगा। जिसको छोड़ना है उसे हम छोड़ते नहीं। जिससे मेरा दिखता है, आभास होता है, जो द्रष्टा है, जो सत्स्वरूप है, जिसे पहचानना है उसे हम पहचानते नहीं और जो साथ नहीं रहेगा उसे हम पकड़ते हैं। यह कैसी विडम्बना है!

इन्सान की बदबख्ती अन्दाज से बाहर है,
कम्बख्त खुदा होकर बन्दा नजर आता है।

राजा भोज के समय की बात है। एक राजा को हीरों की परख और संग्रह में बड़ी रुचि थी। उसके पास एक बहुत पुराना

हीरा था जिसकी परख कोई नहीं कर पा रहा था। बड़े बड़े जवेरी, हीरा-पारखी आए, परन्तु असफल हुए। उसकी कीमत कोई नहीं आँक पाया। आखिर में एक बूढ़े अनुभवी हीरा-पारखी ने उसको परखने का बीड़ा उठाया। उसने कहा–"मैं पूर्णिमा की रात को देख कर बताऊँगा।" पूर्णिमा की रात को उसने उस हीरे को देखा, उसे जाँचने में अपनी विद्या की अटकलें लगाई, परन्तु नहीं पहचान पाया। राजा को आकर बोला, "कुछ दिन बाद बताऊँगा।"

उसके धूप में बाल सफेद नहीं हुए थे! इस विद्या में उसने अपना सारा जीवन लगाया था। उसने फिर कोशिश की और कुछ ही दिनों में अपनी कोशिश में सफल होकर राजा के पास आकर बोला-"महाराज! इसकी कीमत ९९ लाख रुपये हैं।" राजा ने पूछा, 'पहले क्यों नहीं बताया?' वह बोला-'ऐसा हीरा पहले मैंने कभी देखा नहीं था। इसको मैंने अपनी सब विद्याओं का प्रयोग करके जाँचा, पर कोई लाभ नहीं हुआ। फिर सोचा, शायद यह चन्द्रमणि होगा। तो मैंने इसको पूर्णिमा की रात को चन्द्र प्रकाश में जाँचा, लेकिन यह चन्द्रमणि भी सिद्ध नहीं हुआ। तब इसके आगे में लाख रुपये वाले हीरे रखता गया। ऐसे ९९ हीरों के प्रकाश का इसमें तिरोभाव होता गया, मगर सौवे हीरे का प्रकाश इसमें समा नहीं सका; तो मैं समझ गया कि इसकी कीमत ९९ लाख है।"

राजा प्रसन्न होकर बोला, "मैं तुमको इनाम देना चाहता हूँ। जो इच्छा हो सो मांगो!" वह बोला, "महाराज! जो आप यथा योग्य समझें वह दें।" बार बार आग्रह के बाद भी जब उस हीरा-पारखी ने अपनी इच्छा नहीं बताई तो राजा ने कहा, "अच्छा वजीर को पूछते हैं। वजीर जो कहेगा, वही देंगे।" परन्तु वजीर से पूछने पर वजीर ने जो जवाब दिया उसे सुनकर सब दरबारी सन्न रह गए। वजीर फिलॉसाफर था। उसने कहा—

"महाराज! यदि मुझे पूछते हैं तो मैं कहता हूँ कि इस विलक्षण विद्या के धनी हीरा–पारखी के मस्तक पर सात जूते मारे जाय।"

यह वरदान था या अभिशाप! यह इनाम था या सजा! यह कोई ऐरे गैरे नत्थूखेरे के मुंह से निकली बात नहीं थी कि जिसको सहज ही में टाल दिया जाय! इसके पीछे राज्य के सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क की विचार शक्ति का बल था। राजा ने सोचा, कहीं वजीर ईर्ष्यावश तो यह नहीं कह रहा है! वजीर से पूछा-'तुम ऐसा कैसे कहते हो!' वजीर ने कहा, 'महाराज! आपने कहा है कि यथायोग्य हो वह कहो। तो यथायोग्य तो इसके लिये यही है। महाराज! 'दुर्लभं मनुष्य जन्म।' ८४ लाख योनियों में भटकने के बाद यह दुर्लभ मनुष्य जन्म मिलता है। फिर इसको तो ऐसी विचक्षण बुद्धि मिली है-और भारत में जहाँ आध्यात्मिक परमाणु व्याप्त हैं, इसको जन्म मिला है। यानि एक तो मनुष्य जन्म, दूसरे भारत में जन्म, तीसरे

ऐसी विचक्षण बुद्धि-इन तीनों के संयोग से ब्रह्मज्ञान पाया जा सकता था, उसकी बजाय इसने अपनी सारी योग्यता को, अपने सारे जीवन को पत्थर परखने में लगा दिया। क्या यह पत्थर परखने की विद्या इसको परलोक में सहारा दे सकती है? इसको मोक्ष दिला सकती है? जन्म-मृत्यु के दुःख से बचा सकती है! विद्या ही अर्जन करनी हो तो ऐसी करें जो बन्धनों से मुक्त करें, बन्धनों से छुटकारा दिलाएँ। न कि बन्धनों के पाश मजबूत करें?

'सा विद्या या विमुक्तये'

सुनकर हीरा पारखी के दिलो-दिमाग को गहरी चोट लगी। उसे अपनी गल्ती महसूस हुई। बात सत्य थी। सत्य बात को सुनने वाले कम होते हैं, और सत्य कहने वाले भी कम ही मिलते हैं।

सब प्रकार की बाह्य विद्याएँ शरीर की सुविधाएँ बढ़ाती हैं। सुविधाओं की दौड़ मनुष्य के मन-मस्तिष्क को अशांत करती है। ब्रह्मविद्या अन्दर की शांति दिलाती है। आनन्द के भण्डार स्व-स्वरूप का भान कराती है। शरीर को सुविधाएँ शरीर को ठीक रखेगी। परन्तु शरीर कभी ठीक रहा है? उसकी स्थिति तो कभी बनी-कभी बिगड़ी। 'शरीरं व्याधि मंदिरम्।' शरीर में व्याधि होना स्वाभाविक है। और शरीर कभी स्वस्थ रहा है? हम किसी को पूछते हैं-'स्वस्थ तो हैं?' और जवाब देने वाला भी कह देता है, 'हाँ! पूर्ण स्वस्थ हूँ।' कहते समय वह विचार नहीं करता कि अन्दर तो अशान्ति का साम्राज्य है, यह चाहिये-वह चाहिये की

रट लगी हुई है-ऐसा करना है, वैसा करना है-की सैकड़ों योजनाएँ चल रही होती है। फिर भी झट से कह देता है-'हाँ,स्वस्थ हूँ।' वस्तुतः हम 'स्वस्थ' शब्द का अर्थ ही नहीं जानते। 'स्वस्थ' का अर्थ होता है स्व (आत्मा) अस्थ (स्थित होना) : 'स्वयं में स्थिति'। यानि अपने 'आत्मस्वरूप में स्थित होना।' ब्रह्मज्ञान अपने आत्मस्वरूप में स्थिति कराता है। शरीर की स्थिति सुधरी या बिगड़ी उससे कोई फर्क नहीं पड़ता; परन्तु एक बार यदि आप अपने आत्म स्वरूप में स्थिति हो गए तो स्वामी रामतीर्थ कहते हैं कि 'धिक्कार है उन देवताओं को जो आपकी सेवा में हाजिर होने के लिये स्पर्धा न करें।

अन्य विद्याओं में क्षय है, विक्षेप है। ये लौकिक विद्याएँ हैं, लौकिक फल देती हैं। ब्रह्मविद्या आध्यात्मिक विद्या है। इसमें कहीं दोष नहीं। दुःख से छूटने के लिये इसी का सहारा लेना पड़ेगा। वह सहारा भले ही आज लो या कल या वर्षों बाद, नहीं तो सदियों के बाद भी लेना पड़ेगा। दुःखपूर्ण अवागमन के चक्कर से छूटने के लिये ब्रह्मज्ञान के सत्संग के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं है-कोई रास्ता नहीं है।

'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'

इसलिये बार बार कहा जाता है कि सत्संग महाधर्म है, सत्संग महायज्ञ है, सत्संग महापुण्य है, सत्संग महातीर्थ है, सत्संग महातप है। ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

ऐसे सन्तों को कीर्ति की परवाह नहीं होती बल्कि कीर्ति उनके पीछे-पीछे चलती है—

३१–७–७६
जयहिन्द हाईस्कूल
मणीनगर (अहमदाबाद)

हाईस्कूल का प्राङ्गण विद्यार्थी, अध्यापक वर्ग एवं अन्य गण्य-मान्य महानुभावों से खचा खच भरा है। एक ऊँचे आसन पर स्वामीजी हाईस्कूल के प्रधानाचार्य श्री वी. पी. मेहता के साथ विराजमान् है। सभी में उल्लास व्याप्त है। अभी अभी स्वामीजी का बेन्ड बजाकर स्कूल के विद्यार्थियों ने स्वागत किया है। यह वही स्कूल है जिसमें स्वामीजी का बचपन किसी समय खेला था, जिसमें स्वामीजी ने पहली, दूसरी व तीसरी कक्षा पास की थी-प्रथम श्रेणी में, जिसमें अपनी श्रेणी में मॉनिटर रहकर अपने साथी विद्यार्थियों को अच्छी प्रकार नियंत्रित करके अपने आगे के उत्कृष्ट जीवन की पगध्वनि पहले से सुनाई थी। जिस स्कूल में पढ़कर समाज को मार्ग दर्शन देने वाले महापुरुष पैदा होते हैं वह स्कूल धन्य है !

आकाश में मेघ छाए हुए हैं। वे गरज-गरज कर जैसे कह रहे हो कि तुम लोग सब तैयारी कर लो बाद में मैं बरसूँगा। लेकिन उनकी गरज से कोई भयभीत नहीं लग रहा है।

प्रधानाचार्य जी माईक पर बोलने के लिये खड़े होते हैं।

प्रधानाचार्यजी श्री वी. पी. मेहता—

"आज हम सबको स्वामीजी को अपने बीच पाकर बड़ा हर्ष हो रहा है। तीन दिन पूर्व मैंने स्वामीजी का प्रवचन स्वामीनारायण हॉल में सुना था। अहो ! मैं तो सुनकर विचार ही करता रहा कि स्वामीजी क्या बोल रहे हैं ! विवेकानन्द, रामतीर्थ, शंकराचार्य श्रीकृष्ण, गाँधी, गीता, योग–भक्ति–ज्ञान सबका उनके प्रवचन में समावेश है। कोई भी विषय उनसे अछूता नहीं है और इतनी कुशलता से वेदान्त को समझा रहे थे कि बस ? फिर और भी मैंने आश्चर्य से देखा कि प्रवचन के बीच स्वामीजी मेरी ओर देख रहे हैं–शायद वे मुझे पहचानने की कोशीश कर रहे थे और अचानक उन्होंने मुझे पहचान कर अपने पास बुलाया, मुझे आदर दिया, ऊपर बिठाया। मेरा हृदय गद्गद् हो गया यह देखकर कि १९५१–५२ में जो विद्यार्थी रूप में मेरी स्कूल में पढ़ा है, आज वह इतने ऊँचे आसन पर जो बड़े गौरव का स्थान है उस पर बैठकर पढ़ाने वालों को ही पढ़ा रहा है, उपदेश दे रहा है; लौकिक ज्ञान का नहीं, आध्यात्मिक ज्ञान का, जीवन को सफल बनाने वाले ज्ञानका। फिर मैंने आग्रह किया कि एक बार जिस स्कूल में आप पढ़े हैं वहाँ अवशय पधारें। स्वामीजी ने मेरा आग्रह स्वीकार किया और आज 'आप श्री' का स्वागत करने का हमें सुअवसर मिला है।

आज बहुत सुहावना दिन है । आप सब विद्यार्थी स्कूल की प्रार्थना के साथ गीता पाठ और ध्यान भी करते हैं, लेकिन आज तो महान् योगीराज, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष, प्रत्यक्ष ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की उपस्थिति में हम सब ध्यान करेंगे । ऐसे में यदि थोड़ा सा भी महापुरुष का आशीर्वाद, थोड़ी सी भी मीठी नजर आपको मिल गई तो समझो जिस पुण्य घड़ी को हम काफी समय से ढूँढ रहे हैं, इन्तजार कर रहे हैं वह आ गई है । आप तो स्वामीजी के बड़े नजदीक हैं और भाग्यशाली हैं, क्योंकि आप सब उसी स्कूल में पढ़ रहे हैं जिसमें वन्दनीय संत ने अध्ययन किया है । कई भक्त भगवान श्री कृष्ण के बालस्वरूप को ही पसन्द करते हैं यद्यपि भगवान श्री कृष्ण बड़े हुए थे परन्तु भक्त तो यही कहता है कि मैं तो बाल कृष्ण का ही पूजन करूँगा । वैसे ही मैं तो स्वामीजी को यही कहूँगा कि अभी स्वामीजी भले ही कुछ भी बन गए हों, परन्तु हमें तो वे बाल हँसमुख भाई ही बनकर यहाँ आशीर्वाद दें ।"

यह सुनकर स्वामीजी खड़े हो जाते हैं और प्रधानाचार्य के दोनों हाथ पकड़कर जबरदस्ती अपने सिर पर रखते हैं और कहते हैं,'आशीर्वाद तो आप हमें दीजिये । आप हमारे गुरु हैं ।" स्वामीजी का यह भाव देखकर सभी गद्गद हो जाते हैं ।

श्रीमती वी. पी मेहता ने स्वामीजी को बचपन में बहुत नजदीक से देखा था । अब माईक के पास आकर वे अपने भाव व्यक्त करती हैं ।

श्रीमती वी. पी. मेहता–

स्वामीजी जब यहाँ पढ़ते थे तो उत्साह से हर कार्य करते थे । कई कामों में ये हमारी सहायता भी करते थे और सदैव प्रसन्न रहते थे, इसलिये इनको उस समय हम 'हँसमुख भाई' कहकर बुलाते थे । कहते हैं-'पूत के पाँव पालने में ही दीख जाते हैं ।' हँसमुख भाई की उस समय की आदतें, कार्य करने के ढंग, उत्साह, तीक्ष्ण-बुद्धि आदि सभी यह संकेत दे रहे थे कि यह बालक अवश्य भविष्य में जाकर कोई महापुरुष बनेगा, परन्तु हम ही उस समय इनको पहचान नहीं सके थे । सन्त बनना, उपदेश देना, समाज का मार्ग दर्शन करना, अपने को मिटाकर समाज को आगे बढ़ाना यह सरल कार्य नहीं है । हम तो पहले सोचते थे कि सिंधी भाई पैसे कमाने में ही रहते हैं, व्यापार करने में, बड़ी बड़ी दुकानें खोलने में ही रहते हैं; परन्तु ऐसा नहीं है यह हमें अब मालूम हो गया है । वैसे ऐसे सन्तों को कीर्ति-यश की परवाह नहीं होती है अपितु कीर्ति इनके पीछे-पीछे चलती है । सच्ची कीर्ति के अधिकारी भी वे ही हैं । कीर्ति वास्तव में ऐसे सन्तों को ही ढूँढ़ती है ।

'जननी जणें तो भक्त जण, काँ दाता काँ शूर ।
नहीं तो रहेजे बाँझणी मत गुमावीश नूर ॥'

ऐसी स्कूल को धन्य है जिसमें ऐसे संतों ने अध्ययन किया है ! वे माँ–बाप धन्य हैं जिन्होंने ऐसे संतों को जन्म दिया है ! वे भक्तजन धन्य हैं जिनको ऐसे संन्तों का सहारा व मार्ग-

दर्शन मिलता है ! ऐसे सन्त ही हमको ईश्वर की तरफ ले जाते हैं ।

अब भूतपूर्व मिनिस्टर श्री कृष्ण भाई को भी बोलने का आग्रह किया जाता है, अतः वे माईक के सम्मुख खड़े होते हैं।

श्रीकृष्ण भाई—

जहाँ सूर्य स्वयं प्रकाशित हो रहा हो, वहाँ दीपक को रखने की अवशयकता ही नहीं रहती । मैं स्वामीजी के बारे में क्या बोलूँ ? मैं तो पहले समझता था कि ये साधु, ये बाबा लोग मुफ्त का खाते हैं और देश पर भार स्वरूप हैं । परन्तु जब पहली बार स्वामीजी के सम्पर्क में आया तो जैसे मुझ पर कोई जादुई असर हुआ ! स्वामीजी का ज्ञान, कार्य शक्ति, कुशलता, मार्ग–दर्शन-जो भी मैंने देखा-अनुभव किया उससे लगा कि स्वामी रामतीर्थ या स्वामी विवेकानन्द का पुनः जन्म हुआ हो । फिर तो मैं मिनिष्टर भी बना, परन्तु कहीं आनन्द नहीं मिला और वह आनन्द मुझे अब स्वामीजी के चरणों में मिलता है । अभी आप सब भी स्वामीजी की अमृत–वाणी का लाभ उठाएँ गे ।

प्रधानाचार्यजी श्री वी.पी. मेहता—

अब मैं आपका और कुछ बोलकर अधिक समय नहीं लेना चाहता और स्वामीजी से विनती करता हूँ कि अब अपने वचनामृत का पान करावें ।

स्वामीजी-आचार्यश्री के स्वरूप में, अध्यापकों के स्वरूप में. विद्यार्थियों के स्वरूप में एवं अन्य सज्जनों व सन्नारियों के

स्वरूप में विराजमान् मेरे अन्तर्यामी आत्मदेव ! जैसे दूर से दूर गया हुआ पुत्र, मित्र या साथी अपने माता-पिता और गुरुजनों से मिलता है, अपने मित्र-साथियों से मिलता है तो उसके हृदय में कैसे भाव उत्पन्न होते होंगे ! आचार्यश्री का स्वभाव और बेन(बहन) का स्वभाव व प्रेम देखकर-उनका मेरे प्रति लगाव देखकर मेरे मन में जो भाव उठता है, वह मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। 'यतो वाचो निवर्तन्ते'-जहाँ वाणी नहीं पहुँचती, आज मुझे लग रहा है कि मैं संत आशाराम नहीं हूँ, वही पुराना हँसमुख भाई हूँ । यहाँ मैं वक्ता हूँ और आप सब श्रोता-ऐसा मत समझना ।

यह विद्यालय ऐसा मंदिर है जिसमें राम को जानने को समझ आती है । अगर बचपन में विद्यालय का ऐसा पवित्र वातावरण, आचार्यों का सचेत मार्गदर्शन नहीं मिला होता तो मेरा वह छोटा सा जीवन छिन्न-भिन्न हो गया होता; किन्तु अब वही जीवन, वास्तविक जीवन-आत्मानन्द से पूर्ण जीवन बन गया है । जब जब मुझे वह समय अपने बाल्यपन का याद आता है तो शरीर से तो नहीं परन्तु हृदय से मैं यहाँ आपके बीच में अवश्य आ जाता हूँ ।

एक बार महाराज श्री रंग अवधूत बम्बई पधारने वाले थे । वहाँ के भक्तों को यह सूचना दी-गई कि वे १॥-२ बजे बम्बई पहुँच जाएँगे । २के ३बजे–४बजे-५ बजे: भक्त इन्तजार कर रहे हैं, परन्तु महाराज श्री रंग अवधूत नहीं पहुँचे । बहुत

देर बाद करीब पाँच-साढे पाँच घंटे बाद ७॥–८ बजे महाराज श्री रंग अवधूत भक्तों के बीच पहुँचे। भक्तों के हर्ष का पार नहीं रहा। भक्तों के बीच महाराज श्री ने कहा–"आप सोचते होंगे-महाराज ने बहुत देर कर दी, हम ५-५॥ घन्टे से बैठे हैं; तो इसमें तुम्हें कुछ भी खराब लगाने की जरुरत नहीं हैं। केवल ५ घंटे को प्रतीक्षा के बाद ही तुमको यदि संत मिल गए तो भी आप नफे में हैं। तुम्हें तो ५ घंटे की ही कीमत चुकानी पड़ी है; परन्तु हमें जब संत मिले तो वह वर्षों की प्रतीक्षा के बाद, वर्षों की तपस्या के बाद मिले थे। ५ घंटे आपके मन में जो संत का चिंतन हुआ है उससे तुम्हारा बहुत हित हुआ है। तुम्हारा हृदयशुद्ध हुआ है और शुद्ध हृदय में ही परमात्मा का आनन्द आता है।

मैं भी आज यहाँ एक घंटा लेट आया हूँ। मेरे मनमें आया कि शायद आपको यह अच्छा नहीं लगा होगा, इसलिये मैंने श्री रंग अवधूत का प्रसङ्ग सुनाया। मैंने भी करीब ७ वर्ष बहुत तपस्या की, कई वर्ष अज्ञात् भी रहा। इतने लम्बे काल में ध्यान, लय योग, कुण्डलिनी योग, नादानुसंधान योग, राज योग, ज्ञान योग जो कुछ भी सीखा, प्रयोग किया, अनुभव किया उससे योगी और ज्ञानी महापुरुषों के प्रति मेरी निष्ठा ही पक्की हुई है। ऐसे महापुरुषों का समाज जीवन में क्या महत्व है! इस बात का इससे पता चलता है। इसलिये मैं कुछ लेट यहाँ पहुँच पाया तो यह जब विचार आता है और सोचता हूँ

कि इसके लिये आभार या माफी मागनी चाहिये क्या? संत दृष्टि से देखें तो क्षमा याचना का प्रश्न ही नहीं उठता। क्षमा-याचना उससे की जाती है जो दूसरा हो। संत की दृष्टि में द्वैत नहीं होता। संत तो सबको अपना आत्मस्वरूप समझते हैं।

मैं लेट शरीर से था, परन्तु वैसे मैं सदैव नजदीक ही। जो अपने आप में, परब्रह्म परमात्मा में स्थित हैं, वे भले ही लगे कि लेट आए, परन्तु वे वास्तव में समय से पूर्व ही होते हैं। आपका तो कह नहीं सकता; परन्तु मेरा तो यह अनुभव है। क्यों कि विष्णु तत्व सर्वत्र है।

'जले विष्णु थले विष्णु'

मुझे यहाँ पर कुछ वचन बोलने के लिये कहा है। मैं अपनी कुछ अनुभूतियाँ सुनाऊँगा; परन्तु अपने आचार्य बैठे हों और उनके सम्मुख शिष्य कुछ बोलें, यह अच्छा नहीं लगता, बुरा भी लग सकता है। परन्तु इसी बात को दूसरी दृष्टि से देख सकते हैं कि आचार्यों के सामने बोलने से यदि अपने द्वारा कुछ भूल भी होगी तो वह उनके द्वारा सुधार दी जायगी।

एक संत कहते थे–

दिलरूबा दिल की सुनाऊँ सुनने वाला कौन है?
जामे हक भर भर पिलाऊँ पीने वाला कौन है?

जिनको सत्संग सुनने की इच्छा हो वे हाथ ऊपर उठावें!
सभी बच्चे अपने हाथ ऊपर उठाते हैं—

तभी आकाश के बादल अपने आप को थाम नहीं पाए और धीरे धीरे बरसने लगे। उन्होंने समझा हो शायद बच्चों ने हमें बुलाने के लिये ही हाथ ऊपर उठाए होंगे।

स्वामीजी– मेघराज आपकी परीक्षा लेना चाहते हैं। ब्रह्म-रस का पान ऐसे ही नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि कोई करना हो चाहता हो तो मेघराज कभो विघ्न नहीं डालते, वे तो परम सहयोगी होते हैं, ऐसा तो कई बार अपने सत्संगों में हुआ है। फिर भो वे आपकी परीक्षा लेने आ पहुँचे हैं। कह दो उनको कि हम ब्रह्मानन्द में अन्दर से भीगने के लिये बैठे हैं, तुम चाहो तो बाहर से भी भिगो दो, सोने में सुहागा है। रखो मूंछों पर हाथ और बोल दो मेघराज को !

सभी मूंछों पर हाथ रखते हैं। बच्चों ने कभी मूछों पर हाथ नहीं रखे थे, परन्तु आज एकाएक रख दिया, फिर अपने इस कृत्य पर उत्साह पूर्वक हँसने लगे। परन्तु वर्षा बन्द नहीं हुई।

स्वामीजो–आप सब समझते होंगे कि स्वामोजी तो शेड में बैठे हैं, इसलिये उनपर तो मेघराज का असर नही हो रहा है; तो लो मैं भो खुले में आ जाता हूँ।

ऐसा कहकर स्वामीजी ने अपनो कुर्सी भी आगे खुले आकाश में खींच ली। परन्तु आश्चर्य के साथ सबने देखा कि स्वामीजो ने ज्योंही कुर्सी खींची और मुस्कराते हुए आकाश की ओर देखा कि तभी वर्षा एकाएक बन्द हो गई। सबने देखा, स्वामीजी मुस्कुरा रहे हैं और काले काले बादलों से ढँका आकाश मौन हो

गया है। ब्रह्मानन्द में चौबीसों घंटे रमने वाले सन्तों की सेवा में प्रकृति किस प्रकार सहचरी बनकर उनकी आज्ञा में कार्य करती है यह प्रत्यक्ष देखकर हजारों श्रोताओं के चेहरे पर ईश्वरी रास्ते में बढ़ने का पवित्र भाव झिलमिलाने लगा।

स्वामीजो–अच्छा ऽऽ, क्या सुनाऊँ आपको? ब्रह्मरस का पान कराऊँ या विषयानन्द का? विषयानन्द का मजा तो बहुत लोग ले रहे हैं संसार में। सारा संसार ही विषयानन्द में फंसा हुआ है। सभी किसी न किसी के दीवाने हुए हैं। कोई नाम के पीछे- यश के पोछे, कोई चमडो के पोछे ओर कोई दमड़ी के पीछे दीवाने हो रहे हैं–

नाम दीवाना-दाम दीवाना- चाम दीवाना कोऊ,
धन धन जो राम दीवाना, बनो दीवाना सोऊ।

दाम दीवाना दाम न पायो। धन प्राप्ति में लगे हैं, परन्तु धन नहीं मिलता। मिलता है तो उसका खोने का डर रहता है और जो मिलता है वह खोता ही है! या तो उसे हम छोड़ दें या वह हमें छोड़ जायगा।

चाम दीवाना चमड़े के सुख के पीछे लगा है, परन्तु काम वृत्ति कभी शांत नहीं होती। अविचार से वह फिर भी उस वासना की पूर्ति के लिये लगा हुआ है। विचार करे तो स्त्री का शरीर क्या है? मल-मूत्र का थैला ही तो है! उसका जरा सा विचारपूर्वक विश्लेषण करेगा तो अन्दर क्या मिलेगा? रक्त मांस, हड्डी, कफ, विष्ठा आदि जिसको देखते ही ऊब उत्पन्न

हो जाय, जिसके विचार मात्र से भी घृणा होती है। फिर भी वह लगा है उसी वासना के पीछे और अपने अनियमित आचरण से अपने शरीर का, अपने स्वास्थ्य का, अपने तेज का नाश करता है।

कोई यश अर्जन में लगा है। यदि यश आया तो उसके पीछे अपयश आने हा वाला है। निन्दा-स्तुति सदैव साथ-साथ रहते हैं। स्तुति की इच्छा की तो उसके पीछे निन्दा भी आयगी। यश से जितना फूलेगा उतना ही अपयश से दुबला होना पड़ेगा। अपयश का भय सदैव मन में बना रहेगा, फिर शांति कहाँ ?

कहीं भी जाओ, ऐसे दीवाने सब जगह मिल जाएंगे। परन्तु राम दीवाने नहीं मिलेंगे, और राम दीवाने के पास ही सच्ची शांति और सुख मिलता है। एक दीवाना यहाँ आपके सामने भी बैठा है। आप हमारी दाढ़ी-बाढ़ी देखकर कहेंगे, ये तो महाराज हैं, ये तो बाबा हैं; परन्तु जब सभी दीवाने सब तरफ भटक कर हताश हो जाते हैं, निराश हो जाते हैं तब ऐसे बाबा के ही पास आते हैं।

मनुष्य भटकता ही तो रहता है। जब तक राम नहीं मिलता तब तक वह चारों युगों में भटकता है-८४ लाख योनियों में अपने अपने कर्मों का फल भोगता हुआ भटकता रहता है। **'कर्मानुबन्धानि मनुष्यलोके ।'** वह कहीं चैन नहीं पाता। तब ऐसे बाबा ही जो राम दीवाने होते हैं, जिन्होंने अपने आपको

पहचाना है, उसे चैन का—आनन्द का रास्ता बताते हैं। यह शरीर एक प्रकार का यंत्र है, एक मोटर है। इसको चलाने वाला इसके पीछे सूक्ष्म शरीर होता है। जब मृत्यु आती है तब यह सूक्ष्म शरीर इस शरीर को त्याग कर बाहर निकल जाता है और कुछ समय के लिये एक प्रकार की मूर्च्छा में से गुजरता है। फिर वह अपने पूर्व किये गये पाप व पुण्य कर्मों के अनुसार स्वर्ग-नर्क आदि विभिन्न लोकों के सुख-दुःख भोग कर जैसे शराबी अपनी आदत के अनुसार शराबखाने की ओर चल पड़ता है; सिनेमा का शौकीन सिनेमा घर की ओर चल पड़ता है और ईश्वर का प्यारा ईश्वर के मन्दिर की ओर चल पड़ता है वैसे ही यह शरीर अपनी तृष्णा-वासना और संस्कारों के अनुसार पृथ्वी पर नवीन देह धारण कर लेता है। परन्तु राम दीवाना राम के पास ही जाता है। उसके पास जो आता है उसे भी वह राम के पास ले चलता है। अन्य दीवानों को भौतिक पदार्थ मिलते हैं, परन्तु राम दीवानों को भौतिक व अभौतिक दोनो ही पदार्थ सहज उपलब्ध होते हैं।

मुझे अभी भी याद आता है कि जब कभी कोई संस्कृत का कठिन श्लोक याद नहीं होता था तब मैं थोड़ा गंभीर हो जाता। कोई भी उलझा प्रश्न मन एकाग्र होने से, ध्यान में उतरने से शीघ्र हल हो जाता। ध्यान में मनुष्य एक प्रकार से अपनी देह का भान भूल जाता है और वह सूक्ष्म जगत में पहुँच जाता है। सूक्ष्म जगत में अलौकिक शक्ति है। वहाँ उसे

उस प्रश्न का शीघ्र ही हल मिल जाता है। यह मेरा निजि अनुभव है। और भी बहुत से ऐसे कई सामान्य साधकों के भी अनुभव हैं जो इसकी पुष्टि करते हैं।

सन् १८८८ की बात है। दक्षिण भारत में एक रामानुजम् नाम का व्यक्ति हुआ है। वह गणित के प्रश्न बात की बात में हल कर लेता था। विदेश के एक विख्यात् वैज्ञानिक डर्विन ने उसको कुछ गणित के प्रश्न पूछे थे। लेकिन वह पूछ कर चुप होता था उसके पूर्व ही उसे प्रश्नों के हल मिल जाते थे। वह बड़ा आश्चर्यचकित था; परन्तु उसने ध्यान से देखा तो उसे मालूम हुआ कि जब प्रश्न पूछा जाता है तो रामानुजम् की आँखों की काली पुतली ऊपर की ओर चली जाती है और क्षण भर के लिये वह अपने आपको भूल जाता है जैसे वह इस जगत में है ही नहीं और दूसरे ही क्षण वह उस प्रश्न का हल उसे बता देता है। यह ध्यान का ही चमत्कार है।

आपको भी यह तो कई बार अनुभव में आया होगा। जैसे आप किसी समस्या में उलझ गए हैं। आपको कोई रास्ता नहीं सूझ रहा है। आप परेशान से होकर वह स्थान छोड़ देते हैं, अपना आलस्य दूर कर देते हैं, पानी पी लेते हैं और थोड़ा टहल कर आकर अपने स्थान पर पुनः बैठ जाते हैं। इस प्रकार मस्तिष्क थोड़ा शांत हुआ और आप देखते हैं कि आपको रास्ता मिल गया। आपका प्रश्न हल होगया। दिमाग से आपका बोझ उतर गया।

ऐसा कैसे हुआ ? यह इसलिये हुआ कि जब आप उठकर, पानी पीकर, टहलकर पुनः अपने स्थान पर शांत-चित्त होकर बैठते हैं तो वातावरण में परिवर्तन हो जाता है। आपकी चित्त वृत्ति शांत होकर अन्तर्मुख हो जाती है, मन थोड़ा एकाग्र हो जाता है, ध्यान की एक छोटीसी प्रक्रिया घट जाती है और उसमें से आपको हल मिल जाता है।

आप कहेंगे, यह ध्यान-ध्यान तो साधुओं के काम का है। हम तो संसारी हैं। हम इसको कैसे कर सकते हैं ? भैया! यह साधुओं के लिये ही नही है। यह तो सबके लिये है। यदि जीवन में यह ध्यान की कुशलता हासिल कर लें तो जीवन जीवन बन जाता है। जीवन जीने की कला हाथ में आ जाती है। वह किसी भी प्रकार के व्यवहार में सफल होता है। उसके जीवन से दुःख की घटाएँ सरकने लगती हैं।

जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण है, हृदय शुद्ध है, चित्तशांत है, विषय लौलुप नहीं है वह ध्यान में बहुत शीघ्र प्रगति करता है। लोग पूछते हैं, ध्यान कैसे करें ?

ध्यान चार प्रकार के होते हैं-

१ पादस्थ, २ पिण्डस्थ,

३ रूपस्थ और ४ रूपातीत (ब्रह्म ध्यान)

इन चारों में रूपातीत शास्त्र एवं तत्वज्ञों के अनुभव की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। कोई अपने संस्कार व स्वभाव के अनुसार इनमें

से कोई भी ध्यान कर सकता है, परन्तु यह सबसे उत्तम एवं शीघ्रगामी है। लक्ष्य परशीघ्र पहुँचाने में समर्थ है। यह बैलगाड़ी, मोटरगाड़ी या ट्रेन का मार्ग नहीं है, हवाई जहाज का मार्ग है।

आत्म विचार करें, मैं कौन हूँ ? क्या मैं शरीर हूँ ? नहीं। मैं मन हूँ ? नहीं। मैं बुद्धि हूँ ? नहीं। फिर...मैं कौन हूँ ? बचपन मैं नहीं हूँ, जवानी मैं नहीं हूँ–बचपन और जवानी को जानने वाला मैं हूँ।

जब मैं छोटा था तो मुझ पर पिताजी का बहुत प्रेम होने से मुझको बहुत अच्छे अच्छे कपड़े पहनाए जाते थे। एक कमीज मेरे को ऐसा पहनाया था जिस पर हीरे लगाए हुए थे जो चमकते थे। मैने सोचा आकाश में भी किसी ने ऐसा ही कमोज पहना होगा जिसके कमीज पर ये हीरे (तारे) टिमटिमा रहे हैं-तो हम भी उससे कम नहीं हैं। उस समय मेरी ऐसी बुद्धि थी। फिर इधर आकर स्कूल में पढ़ा। तब चड्डी पहनता था। और आज उस समय की चड्डो बदल गई, कपड़े बदल गए। अब वह पहले की मान्यताएँ भी बदल गई। परन्तु मैं तो वही का वही रहा, तभी तो उसकी याद मुझे है! उसको जानने वाला द्रष्टा रूप में, साक्षो स्वरूप यही अजन्मा-निर्विकार-असंग आत्मा मैं हूँ। कई परिस्थितियाँ आतो हैं और गुजर जाती हैं। सर्दी लगतो है, गर्मी लगती है-इस शरीर को; यह बीमार होता है, तन्दुरुस्त होता है, परन्तु मैं इन सबसे परे हूँ, मुझे कुछ नहीं होता। मैं निर्विकार स्थित हूँ।

इस प्रकार विचार करो और अपने आत्मस्वरूप को स्मरण करो। वेदान्त कहता है, तुम स्वयं शुद्ध-चैतन्य आत्मा हो। तुम्ही इश्वरों के ईश्वर हो। तुम्हारे से ही सब कुछ होता है। सूर्य में तुम्हारा तेज चमक रहा है। तुम्हारी सत्ता से ग्रह-नक्षत्र गति करते हैं। अतः दुर्बल मत बनो। 'नाऽयम् आत्मा बलहीनेन लभ्यः।' अपनी आत्मशक्ति को जगाओ। दुर्बलता को अपने ह्रदय में स्थान मत दो। उस ह्रदय को गोली मार दो जो आप को दुर्बल बनाता है। निर्भय बनो। यदि असफल हुए हो तो घुटने मत टेको। फिर से प्रयत्न करो सफलता के लिये–अवश्य सफलता मिलेगी। हजार बार असफल होने के बाद भी एक कदम फिर से रखो।

Try and try, you will be successful.

आगे बढ़ते रहो। रुको मत, तब तक जब तक कि अपने लक्ष्य तक न पहुँच जाओ।

उत्तिष्ठत् जाग्रत् प्राप्य वरान्निबोधत्।

श्री प्रधानाचार्यजी (खड़े होकर)--

स्कूल में पढ़कर कोई वकील बनता है, कोई डॉक्टर बनता है, कोई इंजिनीयर बनता है तो कोई दुकानदार; मगर हमारी ऐसी तीव्र इच्छा थी कि अपनी स्कूल से कोई विद्यार्थी तत्त्वदर्शी संत बने। और वह इच्छा इस स्कूल के प्रखर व तीक्ष्ण–बुद्धि विद्यार्थी हँसमुख भाई ने आज के स्वामीजो के रूप में प्रकट होकर पूरी की है–यह हमारे लिये परम सोभाग्य को बात है।

सभी करतल ध्वनि (तालियाँ बजाते) करते हैं।

स्वामीजी गुरुओं के भी गुरु हैं मगर अपने पूर्व के हमारे जैसे लौकिक शिक्षा देने वाले गुरुओं को भी जो सम्मान स्वामीजी ने दिया है, वह स्वामीजी की महानता का ही द्योतक है। कई बार प्रकृति मनुष्य के कार्यों में विघ्नरूप बनकर खड़ी होती है, ऐसा प्रायः हमें देखने में आता है, मगर आज ऐसा नहीं हुआ। जब स्वामीजी आत्मानन्द के रस में हमें अपनी मधुर अमृत वाणी द्वारा सरोबार कर रहे थे-डुबो रहे थे तब मेघराजा ने उमड़-घुमड़ कर रंग में भंग डालने की भूल करने का प्रयास किया था, मगर ज्योंही स्वामीजी ने आकाश में देखा, तुरन्त उन्हें अपनी भूल का भान हो गया और वे यहाँ से बिना बरसे विदा हो गये। यह हमारे लिये एक चमत्कार ही था, लेकिन यह सत्य है कि जहाँ तत्त्वज्ञानी महापुरुष होते हैं वहाँ प्रकृति उनके विरोध में नहीं बल्कि उनकी सहचरी बनकर खड़ी होने को बाध्य होती है, क्योंकि प्रकृति पुरुष की चेरी है और इसका ज्वलंत प्रमाण आज हम सबको प्रत्यक्ष देखने का मौका मिला है जब मेघराजा हमारे प्रोग्राम में बिना विघ्न डाले चुपचाप विदा हो रहे थे।

स्वामीजी ने यहाँ पधार कर कुछ निर्मल वचन हमें सुनाने की हमारी प्रार्थना पूरी करके हमें अनुगृहीत किया है उसका बदला तो हम भौतिक वस्तुओं से क्या चुका सकते हैं? इस अर्थ में हम सब असमर्थ हैं, अतः मैं अपने सभी सहयोगी अध्यापकों एवं विद्यार्थियों की तरफ से स्वामीजी के श्री चरणों में प्रेम व श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम करता हूँ। ॐ! ॐ!! ॐ!!!

पतन से आत्मिक उत्थान् की ओर—

१९–९–७६

रविवार—

"ऐ लड़के! इधर आ।" स्वामीजी ने मेरे को इशारे से अपने पास बुलाया। मैं एकबार तो चौंका, परन्तु ऐसे शब्दों में भी न जाने कैसी आत्मीयता थी कि मैं खिंचा खिंचा उनके पास चला गया। प्रणाम तो मैंने किया नहीं। जो प्रणाम करते थे उन पर भी मैं पहले हँसता था कि ये सब ऐसा क्यों करते हैं? इससे क्या होता होगा? मतलब मेरे को साधु-संतों में कोई विश्वास नहीं था। बस, शौक-मौज करना ही जीवन का ध्येय समझता था।

इतना कहकर राजूभाई लेखक के मुंह की ओर निहारने लगा। उसके चेहरे से ऐसा लग रहा है कि उसको (लेखक को) जल्दी न हो और बुरा न माने तो मैं स्वामीजी के प्रति जो मेरे प्रतिकूल भाव थे उनके प्रायाश्चित् स्वरूप अपनी आपबीती सुनाकर अपना हृदय हल्का कर लूँ।

लेखक ने उसे आश्रम का कोई सेवाकार्य सौंपते हुए कहा था कि यदि आप को अनुकूल हो तो आप जरा इस कार्य में इतना सहयोग करें। राजूभाई ने कहा था कि हमारा तो बड़ा अहोभाग्य होगा यदि किसी सेवाकार्य में हमारा उपयोग होवे।

राजूभाई के पिताजी का कपड़े का अच्छा बिजनेस (व्यापार) है । अब वह स्वयं भी पढ़ाई छोड़कर बिजनेस में लग गया है । स्वामीजी को कोई ऐसी कृपा उसपर हुई है जिससे वह इतना गदगद हो गया है कि अपनी कृतार्थता शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहा है । वह फिर आगे कहने लगा—

राजूभाई—मेरे लिये स्वामीजी का यह पहला दर्शन मेरे जीवन को नवीन महत्वपूर्ण मोड़ देने वाला सिद्ध हुआ । यह घटना अक्टूबर १९७४ की है जब मैं माऊन्ट आबू २०-२५ मित्रों के साथ पिकनिक (पर्यटन) पर गया था । वहाँ नलगुफा के बाहर स्वामी जी ने मुझे 'ऐ छोकरे ' कहकर बुलाया और कहा था-तुम बहुत दुबले हो । तुम बड़ के दूध में एक दो चीजें-जो उन्होंने बताई थी, मिलाकर खाओ और अपना स्वास्थ्य ठीक करो । मैंने ऐसा ही किया । अब मेरा शरीर अच्छा है । पहले तो मैं इतना दुबला था कि कोई भी मुझे देखता तो उसे मुझ पर दया आ जाती ।

लेखक– यह तो ठीक है । ऐसे ऐसे सामान्य लाभ तो कईयों को हुए हैं । और कोइ विशेष बात हो तो कहो ।

राजूभाई - वही मैं आप को बता रहा हूँ । मेरा मासिक खर्च ५०० रुपये से भी अधिक था-यह मानने में आप को जरा जोर पड़ेगा,....किन्तु यह सच है । नाटक व सिनामाओं में जाना, होटलों में घूमना और ऐसे–वैसे लोगों से सम्पर्क रखना जो मुझे पतन के रास्ते पर डालते देर न लगावें, बस! यही मेरी दिनचर्या

थी । परन्तु उसके बाद स्वामीजी की कृपादृष्टि मेरे पर हुई और मेरा जीवन बदलने लगा । मैं ऐसी बुरी आदतों का शिकार बन रहा था कि जिनको चाहता तो भी नहीं छोड़ सकता था; लेकिन अब मैं सिनेमा में, होटलों में या और कहीं भी जाने को तैयार तो हो भी जाऊँ, परन्तु जा नहीं पाता। स्वामीजी की अदृश्य कृपा से कोई न कोई विघ्न आ उपस्थित होता है जो मुझे कुसंग से तुरन्त बचा लेता है । ऐसा एक बार नहीं, कई बार हुआ ! अब मेरे इस अच्छे परिवर्तन का इतिहास मैं कुरेदता हूँ तो मुझे स्वामीजी ही स्वामीजी के दर्शन होते हैं । आज मुझे लगता है कि मैं एक बहुत बड़े विनाश के मुंह में जाने से बच गया हूँ । कई दिन से मैं स्वामीजी से प्रार्थना करता आ रहा था कि मुझे ध्यान नहीं लगता, आप मेरे पर भी कृपा करें, परन्तु वे मुस्कराते रहते थे । अभी कुछ दिन पूर्व मुझे कुछ अतिन्द्रिय ऐसे अनुभव हुए हैं कि मैं आपको क्या बताऊँ ? अब ध्यान करता हू तो अन्दर आनन्द ही आनन्द की अनुभूति होती हैं । उस आनन्द की तुलना जगत के किसी आनन्द से नहीं की जा सकती । वह अवर्णनीय है ।

स्वामीजी ने जो भी कृपा मुझ पर की है, वह असीम, दुर्लभ, अपूर्व एवं अदृश्य कृपा है । उसको शब्दों में बताने में मैं असमर्थ हूँ । उनका ऐसा आत्मिक आकर्षण है कि सप्ताह में १-२ बार

आश्रम में उनके दर्शन करने एवं अमृत-वचन सुनने आये बिना चैन नहीं पड़ता।

इतना कहकर राजूभाई तो बताए हुए काम में लग गये मगर लेखक को सोचने को मजबूर कर गये कि इस प्रकार के आज कितने राजूभाई होंगे जिनको जीवन की दिशा स्वामीजी की कृपा से पतन से आत्मिक उत्थान की ओर मुड़ गई है! श्रद्धालु लोगों के साथ स्वामीजी के ऐसे कई कृपा प्रसङ्ग बने हैं, परन्तु यदा-कदा लेखक को कोई भक्त ऐसा प्रसङ्ग बताजाता है तो वह उसे आप पाठकों के सम्मुख रखने का अल्प सा प्रयास करता है, अन्यथा यह उसके बस की बात नहीं है कि वह स्वामीजी के उदात्त लोकहितकारी दिव्य जीवन के एक छोटे से अंश को भी अपनी निर्जीव लेखनी से छू पाए। धन्य हैं ऐसे तत्वज्ञ महापुरुष! और धन्य हैं ऐसे साधक जिनपर उनकी असीम कृपा होती है!

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

ॐ

यह पूजा देह की पूजा नहीं है—

११-७-१९७६, रविवार

श्री गुरु पूर्णिमा महोत्सव

आज गुरु पूर्णिमा है। एक सुन्दर सजाए हुए मंच पर परम पूज्य स्वामीजी आँखें बन्द किये हुए ध्यानस्थ विराजमान् हैं। एक तरफ तख्त पर स्वामीजी के कुछ गायक भक्तों की भजन मण्डली बैठी गुरु महात्मय पर भजन गा रही है, साथ ही विभिन्न साजों की तालबद्ध आवाज विशाल प्राङ्गण में सम्मुख ही विराजमान् हजारों भक्तों को मंत्रमुग्ध कर रही है। सर्वत्र वातावरण में सुगन्ध व्याप्त है। ऐसे मोहक दृश्य को देखने के लिये लगता है सूरज और बादलों में होड़ लग रही है। मालूम होता है बादल सूरज को झाँकने का भी मौका नहीं देंगे, क्योंकि हल्की रिमझिम भी उन्होंने शुरूकर दी है।

कल स्वामीजी ने भक्तों को कहा था कि यह सब गुरु-पूजन का लम्बा चौड़ा प्रोग्राम बनाने की जरुरत नहीं है। आपके हृदय की उदात्त एवं गुरु भक्ति की निर्मल भावनाएँ ही बहुत हैं। वे ही प्रमुख हैं। वे ही आपका साधना का मार्ग प्रशस्त करेंगी; परन्तु भक्त गण स्वामीजी का यह आग्रह कैसे मान सकते थे! वर्ष भर में एक ही तो यह पुनीत दिवस आता है भक्तों के लिये सद्गुरू

के प्रति विशेष रूप से श्रद्धा व्यक्त करने का, और वह भी नहीं मनावें—यह स्वामीजी का आग्रह भक्त कैसे स्वीकार कर सकते थे ? भले ही गुरु को क्योंकि वे तो सदैव आत्मानन्द में मस्त रहते हैं और उन्हें गुरु-शिष्य का भेद आत्मभाव के कारण नहीं भासता, अपने को पुजवाने की आवश्यकता नहीं महसूस होती; परन्तु शिष्यों को तो होती है। इसलिये सद्गुरू की कोई भी आज्ञा न ठुकराने वाले शिष्यों ने पूज्यश्री के इस पूजा आदि न करने के आग्रह को विनयपूर्वक अस्वीकार कर दिया। भगवान सदैव भक्तों के आगे झुकते आए है, और इसलिये भक्तों के ही सद्आग्रह का यह परिणाम है कि ऐसा मधुर अलौकिक आध्यात्मिक दृश्य को देखने का आनन्द सबको आज मिल रहा है।

आज के उत्सव का महात्मय समझाने के लिये एक साधक माईक के सम्मुख खड़ा होता है—

साधक—

आज का दिन बड़ा पवित्र है। हम सबके जीवन में परम-पूज्य सद्गुरु का उपदेश कहाँ तक उतरा है, हम अपनी साधना में कहाँ तक आगे बढ़े हैं उसकी माप करने का, उसका हिसाब किताब करने का यह दिन है। कोई भी शिष्य कहीं भी रहा हो वर्ष भर, परन्तु इस दिन उसे अपनी साधना का विकास बताने एवं श्रद्धा के दो पुष्प चढ़ाने हेतु सद्गुरु के श्री चरणों में आना ही चाहिए, यह कहने की बात नहीं है। हम यहाँ उपस्थित होकर इस बात की प्रत्यक्ष पुष्टि कर ही रहे हैं।

आज हमारे मन में सद्गुरुदेव के प्रति कैसे श्रद्धा के भाव इन बादलों की तरह उमड़-घुमड़ रहे हैं, यह चर्म-चक्षुओं से देखने वाला व्यक्ति नहीं समझ सकता। वह तो यही देखेगा कि यह गुरु देह की पूजा हो रही है—जड़ पुष्पों से; लेकिन ऐसा नहीं है। यह पूजा देह की पूजा नहीं है। यह पूजा समस्त चराचर जगत में व्याप्त निराकार-निर्विकार ब्रह्म तत्त्व की पूजा है। यह देह की पूजा नहीं है। यह परम तत्व को पूजा है। यह दीखने में साकार को पूजा वस्तुतः परमात्म तत्त्व, गुरु तत्त्व की भावभीनी, श्रद्धा से ओत-प्रोत निराकार की पूजा है।

इतना कहकर साधक बैठ जाता है।

(कुछ भक्त भावभीनी सिसकियों में रो रहे हैं)

लेखक अनुभव कर रहा है—

"बाहर इस भीने मोहक वातावरण में बादल रो रहे हैं और इधर गुरुकृपा का भार न सहन कर पाने के कारण हमारे हृदय रो रहे हैं। परन्तु वे भी भीतर ही भीतर कैसे रोयें··· ! गुरु की कृपा ! अहा, वह किसी साँसारिक पदार्थ से नापी जा सकती है ! संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है और न होगा ही कि जो इस कृपा को तोल सके। और इसलिये इतना मुट्ठीभर तुच्छ हृदय इस असीम कृपा का भार अकेले ही कैसे वहन कर सकेगा ! फलस्वरूप वह आँखों का सहारा लेने को मजबूर है। आँखों से

अश्रु बहाकर वह मानो कह रहा है कि बादल तो बाहर बरस रहे हैं तो मैं ही अन्दर क्यों बरसूँ ! सद्गुरु की याद में सदैव तो अन्दर ही रोता हूँ, परन्तु कम से कम आज तो खुलकर बाहर आकर रो लूँ !"

एक–एक करके भक्तगण हाथ में माला, नारियल और कपड़ा अथवा चादर या फल आदि लेकर गुरु–चरणों में अपनी श्रद्धा व्यक्त करने जा रहे हैं । पूजन की होड़ लगी हुई है, लेकिन व्यवस्था से सब काम हो रहा है ।

फिर भी लगता है, यह पूजन कार्य कुछ जटिल होता जा रहा है, क्योंकि कई शिष्य गुरु चरणों में जाते-जाते अपने को सम्हाल नहीं पा रहे हैं ...रो पड़ते हैं । जो पुष्पहार सद्गुरु के गले की शोभा बनने की आकांक्षा कर रहा था, वह अत्यधिक भावावेश से हाथ काँप जाने के कारण पूज्य श्री की गोद में पहुँच कर ही रह जाता है । कोई–कोई शिष्य पूज्य श्री की गोद में सिर रख कर फूट–फूट कर रो पड़ता है, तो स्वामीजी का वरद्-हस्त स्वतः ही उसके सिर पर आशीर्वाद हेतु पहुँच जाता है । और यह एक की बात नहीं है !··· कइयों को–सैकड़ों की बात है ।

यह सब क्या है ? क्या यह देह पूजा है ? नहीं–नहीं, देह पूजा इतने हृदयों को नहीं रुला सकती । देह पूजा इतने हृदयों में अमृत की वर्षा नहीं कर सकती । देहपूजा इतनी आँखों में अश्रुकण नहीं छलका सकती । यह जरूर कुछ और बात है । यह जरूर कुछ ऐसी बात है जो इन स्थूल आँखों का विषय नहीं है । यह जरूर कोई सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्ति है जो इतने हृदयों पर अपना अधिकार जमाए हुए है !

स्वामीजी के योग एवं आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण विशाल नेत्र कभी खुलते हैं–कभी बन्द होते हैं । लेकिन वे जो कुछ भी हो रहे हैं, शिष्य के लिए अमृत की वर्षा ही कर रहे हैं । इन नेत्रों से गुरु और शिष्य में क्या आदान–प्रदान होता है, यह उनके हृदय ही जानते हैं । अन्य कोई कैसे जान सकता है ! अन्यों के वश की यह बात नहीं । उसको जानने के लिये तो वैसा ही हृदय चाहिये ।

यह आत्मिक आदान ही नहीं, दीखने में स्थूल आदान–प्रदान भी हो रहा है । किसी ने बढ़िया रेशमी चादर स्वामीजी के सम्मुख रखी और स्वामीजी ने उसके झुकते ही उसी को उढा दी। किसी ने बढ़िया गुलाब को–इलायची की माला स्वामीजी को पहनाई और उसके झुकने पर वही अथवा बदल कर स्वामीजी के हाथों उसी के गले की शोभा बना दी गई । हाथ भी शिष्य के खाली नहीं हुए । जिन हाथों से भेंट रखी गई, उन्हीं को स्वामीजी द्वारा पुनः किसी दूसरे प्रसाद द्वारा भर दिया गया ।

परन्तु यह सब दीखने में स्थूल है । उसके अन्दर के भाव सभी नहीं पहचान पा रहे हैं । इनके पीछे भी बड़े सूक्ष्म भाव अवश्य हैं–अवश्य हैं ! केवल पहचानने की दृष्टि का अभाव है ।

धीरे-धीरे वर्षा की रिमझिम थम गई है। गुरु-पूजा का भाव व्यक्त करने वाले भजन की संगीत लहरी धीरे-धीरे धीमी होती हुई बन्द हो गई है। स्वामीजी के सम्मुख इकट्ठा होता हुआ नारियल, पुष्पाहार व प्रसाद आदि का ढेर सेवाधारी हटा चुके हैं।

स्वामीजी ने अपने सम्मुख विशाल प्राङ्गण में बैठे हुए भक्तों पर एक प्रेमभरी दृष्टि डाली और अपनी मधुरवाणी में कहना प्रारंभ किया :

स्वामीजी–

किसी भी वस्तु की हस्ती हम देखकर बताते हैं। वस्तु को देखकर ही हम कहते हैं कि यह वस्तु है। 'यह वस्तु नहीं है'-यह भी हम देखकर ही कहते हैं जब वह नहीं दीखती। यानि उसकी नास्ति स्वीकार करनी हो तब भी आँखें चाहिये।

(हाथ में गुलाब का फूल लेकर)

यह गुलाब का फूल है, यह हम इसे देखकर कहते हैं। अब इसमें सुगंध है—यह आँखें देखकर नहीं बता सकतीं। इसके लिये घ्राणेंद्रिय—'नासिका' चाहिये। इसी प्रकार, 'यह कोमल है'—यह जानने के लिये स्पर्शेन्द्रिय 'त्वचा' चाहिये। इसको हाथ से छूकर ही बता सकते हैं कि इसमें कोमलता है। ऐसे ही, इसका स्वाद जानना हो तो रसेन्द्रिय 'जीभ' चाहिये। मतलब यह है कि इसके जिन-जिन गुणों की हमको जानकारी करनी है, उसके लिये विभिन्न इन्द्रियों का सहारा लेना पड़ता है। और ये इन्द्रियाँ

एक दूसरे का कार्य नहीं कर सकती। सब अपना-अपना कार्य ही करके आपको वस्तु के बारे में बता सकती हैं।

अब, यदि आप आँख से देखकर उसकी सुगन्ध मालूम करना चाहे, तो मालूम नहीं हो सकती। उसके लिये नाक का ही सहारा लेना पड़ेगा। इस स्थिति में यदि आँख कहे कि नाक झूठ बोलता है, इसमें कोई सुगन्ध नहीं है, मैं अच्छी प्रकार देखकर कह रहा हूँ—इसमें केवल गुलाबी रंग है—तो आप मानेंगे! इसी प्रकार यदि नासिका कहे कि इसमें कोई रंग या कोमलता नहीं है, केवल सुगंध है—तो आप मानेंगे! या जीभ कहे कि इसमें स्वाद तो है, परन्तु इसमें रंग है और सुगन्ध है ऐसा कहने वाले झूठ बोलते हैं—तो आप मानेंगे? नहीं मानेंगे।

ऐसे ही हम सबका हाल है। इस उत्सव में आए हुए नये-पुराने साधक भी अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार इसको देख रहे होंगे। कोई सोच रहा होगा, गुरु पूर्णिमा का यह उत्सव गुरु लोगों के, बाबा लोगों के कमाने का दिन होता है। देखो, कैसी-कैसी वस्तुएँ-कपड़े, फल, नारियल, रुपये आदि भेंट में आरहे हैं!··· यह 'बालक दृष्टि' है।

दूसरी है, 'साधक दृष्टि'। साधक आज के दिन अपने पवित्र हृदय से गुरु के प्रति श्रद्धा-पूजा का भाव व्यक्त करता है, क्योंकि उसे जीवन में कुछ परिवर्तन दिखाई दिया है। वह अपने पूर्व के कलुषित जीवन में और आज के उत्थान् की ओर द्रुतगति से

अग्रसर जीवन में तुलना करता है, तो उसे गुरु-कृपा का महत्व समझ में आता है और वह गुरु के प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा के भाव से भर उठता है। उससे यह श्रद्धा व्यक्त किये बिना रहा नहीं जाता, क्योंकि यह तो उसका स्वयं का अनुभव है कि उसके जीवन में कितनी पवित्रता-निर्मलता आई है, उसको कितनी शान्ति मिली है! यह साधक की अपनी दृष्टि है।

तीसरी दृष्टि है, 'व्यापारी दृष्टि'। 'यह संत की दृष्टि है। आज तक शिष्य में कितना आध्यात्मिक उत्थान् हुआ है, उसके जीवन में कितनी सरलता, कितनी निष्कपटता, कितनी निर्दोषित आई है, इसका व्यापारिक हिसाब-किताब आज संत लगाते हैं। जब शिष्य अपनी अनन्य श्रद्धा के साथ गुरु के चरणों में जाता है, तो जो पारावार दृष्टि वाले कामिल गुरु होते हैं, वे उसके आध्यात्मिक विकास का माप तुरन्त एक कम्प्यूटर की भांति शिष्य से निकले सूक्ष्म वाइब्रेशनों (तरंगों) से लगा लेते हैं। जैसे रेडियो हवा में से तरंगों को-संगीत को पकड़ता है, वैसे ही वे शिष्य के आध्यात्मिक विकास का माप निकाल लेते हैं और उसको आगे साधना में बढ़ाने के लिये सूक्ष्म संकल्प दे देते हैं। फिर वह भले प्रसाद रूप में दें, स्पर्श से दें अथवा दृष्टिपात् मात्र से दें-यह उन्हीं पर निर्भर है।

तो जैसी जिसकी दृष्टि होती है, उसको वैसा ही दिखाई देगा। जिस रंग के चश्मे से जो देखेगा, उसे उसी रंग का दृश्य दिखेगा। अब बाबा दृष्टि वाला व्यक्ति कहे कि नहीं-नहीं, साधक दृष्टि वाला

ठीक नहीं कहता, उसके जीवन में गुरुकृपा से कोई परिवर्तन नहीं होता, सब ढोंग है-तो साधक दृष्टि वाला उसकी बात मानेगा क्या? यद्यपि वह तो अपनी समझ से ठीक ही कह रहा है, क्योंकि वह तो स्थूल दृष्टि से देख रहा है न? उसे तो यही दीखने में आ रहा है कि लोग जा रहे हैं और प्रसाद आदि चढ़ा रहें हैं। इसमें उसकी गल्ती नहीं है। जैसे नासिका यह कहे कि इस गुलाब में केवल सुगन्ध है-रंग नहीं है, स्वाद नहीं है। परन्तु उसके कहने से कोई मानने वाला नहीं है। उसके ना कहने से रंग और स्वाद का अभाव नहीं होने वाला है। वे तो अपनी जगह हैं ही। यदि अंधा कहे सूरज नहीं होता तो सूरज का अभाव नहीं हो सकता, वह तो रहेगा ही। सूरज को देखने के लिये तो आँखों वाला होना पड़ता है।

तो वैसे ही साधक की श्रद्धा समझने के लिये भी साधक वाला हृदय बनाना पड़ता है। साधक हृदय बनने से ही साधक के अनुभव का आनन्द हम ले सकते हैं। शिव की पूजा करनी हो तो शिव बनकर करनी पड़ती है। कहते हैं न कि वाराणसी की पूजा घर में बैठे हो सकती है। और मैं भी यही कहता हूँ-यह सब दिखावा करने की आवश्यकता नहीं है। सभी साधक अपने हृदय के पवित्र भावों से अपनी-अपनी जगह एकाग्र चित्त से बैठकर गुरु की पूजा कर लें। ब''स! इतना काफी है। क्योंकि आज का युग ही जरा ऐसा है कि लोगों में निष्कपटता नहीं है, व्यवहार शुद्धि

नहीं है । इसलिये ऐसी सूक्ष्म बातों में उनको विश्वास जरा कम होता है । इसलिये कल ही मैंने इन कृष्ण भाई एवं अन्य साधकों को बोला कि कोई आवश्यकता नहीं है इतनी धूम-धाम और टीम-टाम करने की । लेकिन ये सब माने ही नहीं । इनमें कोई L.L.B. है, कोई B.A. है, कोई M.A., कोई M.L.A. तो कोई वकील है । जैसे ही मैं कोई बात निकालूँ, वैसे ही ये कोई न कोई नई युक्ति लाकर उसको काट देवें । अब आज रातों-रात इन्होंने पण्डाल बंधवाकर और आसन-वासन सजा दिया, फिर इनकी बात रखनी पड़ी ।

एक फोटोग्राफर स्वामीजी का फोटो खींचने के लिये सामने आकर खड़ा हुआ है । उसको देखकर स्वामीजी कहते हैं :

स्वामीजी– ये मेरी तस्वीर खींच रहे हैं, परन्तु मेरे असल की नकल नहीं उतार सकते ये । ये भले हजारों तस्वीरें ले लें, परन्तु वे तस्वीरें मेरी नहीं होगी । जो मेरी तस्वीर उतार लेगा, वह फिर 'वह' नहीं रहेगा । वह ब्रह्मस्वरूप हो जायेगा । वह स्वयं क्या हो जाएगा, यह वही जान सकेगा । फिर उसकी भी तस्वीर उतारनी मुश्किल हो जायेगी । जो उसकी तस्वीर खींचेगा, वह उसके देह की खींच सकेगा, उसकी नहीं ।

'हमने तस्वीर खिचाई नहीं, इसलिए
असल बात नकल में आई नहीं ।'

इतना कहकर स्वामीजी खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं । सभी

भक्त मंत्रमुग्ध हो एकटक उनकी ओर निहार रहे हैं । पीछे की तरफ फैलकर बैठे हुए लोग आगे खिसककर आ रहे हैं ।

स्वामीजी (अपनी ओढ़ी हुई सफेद चादर को ठीक करते हुए)–

आध्यात्मिक जगत कोई ऐसा-वैसा नहीं है ! स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म जगत बहुत शक्तिशाली होता है । शिष्य दूर बैठा है और गुरु भी दूर बैठे हैं, फिर भी गुरु के दृष्टिपात् मात्र से या संकल्प मात्र से ही शिष्य को कैसे आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होती होगी ? आप विश्वास नहीं करेंगे ।····इसको आप ऐसे ही मत मानो । आप स्वयं प्रयोग करो । आप एक जगह श्रद्धावान् होकर एकाग्रचित्त से गुरु में भावना करके बैठो–आपको निश्चित रूप से अलौकिक अनुभव होगा ।

एक संत के पास एक भक्त आता था । वह कहता था–"मैं बहुत कोशिश करता हूँ, परन्तु सुबह जल्दी नहीं उठ सकता ।" संत ने कहा, "एलार्म घड़ी खरीद लो ।" उसने ऐसा ही किया, परन्तु एलार्म घड़ी बजती रहती, फिर भी वह उठ नहीं पाता था । एलार्म बज सकता है, परन्तु कम्बल नहीं उठा सकता । वह फिर संत के पास आया और बोला, "स्वामीजी ! इससे भी कुछ नहीं होता । आप कुछ विशेष उपाय बताईये ।" संत ने कहा, "मैं आ जाऊँ तुम्हें उठाने ?" यह सुनकर वह बड़ा आश्चर्य में पड़ा और बोला, "स्वामीजी आ···प! आप कैसे आएँगे ? मैं तो अन्दर की सांकल चढ़ाकर सोता हूँ । सांकल खोलने कौन उठेगा ?"

संत ने कहा, "इसकी तुम चिन्ता मत करो।"

दूसरे दिन वह व्यक्ति गद्गद् होकर उन संत के चरणों में आकर प्रणाम करने लगा।

संत ने उससे पूछा, "कहो, कुछ अनुभव हुआ?"

वह बोला, "स्वामीजी! रात के तीन बजे मैंने देखा कि किसी ने मेरा कम्बल पकड़कर उठाया। ध्यान से देखा तो कमर से ऊपर का पोज आपका मुझे दिखाई पड़ा। फिर आपको ढूंढा, लेकिन आप कहीं नहीं मिले। दरवाजा और उसकी सांकल पूर्ववत ही बन्द थे।"

वह व्यक्ति अभी जिन्दा है। आप उससे पूछ सकते हैं। वह हरिद्वार 'साधना धाम' के एक कमरे में रहता है।

फिर भी कुछ लोग शंका करते हैं–'ऐसा होता है?' मैं दावे के साथ कहता हूँ कि ऐसा होता है, किन्तु वैसी श्रद्धा चाहिये। आप मेरी तरफ नहीं देखें। इधर आपके बीच में ही एक साधक है जो योग बल से अपना शरीर छोड़कर, अन्य लोकों में घूमकर, वहाँ के दृश्य देखकर आता है। यह सब मन की श्रद्धा के भाव से होता है। इसीलिये मैंने कहा था कि साधक जहाँ भी हो–भावना करे गुरु की और दोनों का मिलान हो जायेगा। यह तुम्हारी भावना पर निर्भर है।

एक संत प्रायः करके किसी को पैर भी छूने नहीं देते थे। कोई पुष्पहार पहनाता तो वे तुरन्त उतार देते थे और भक्त को

कई बार डांट देते थे। महापुरुषों को पुजवाने की इच्छा ही नहीं होती, किन्तु लौकिक कल्याण के लिये कभी कभी भक्तों को वे छूट दे देते हैं।.... कुछ लोगों को कई प्रकार के भ्रम होते हैं; इसलिये इस प्रकार की बातें बतानी पड़ती है।

आप लोग आज भीग रहे हैं, फिर भी अपनी जगह पर जमे हुए हैं। भीगते सभी हैं। कोई काम के लिये भीगते हैं–कोई राम के लिये भीगते हैं। आप सब राम के लिये भीग रहे हैं। काम के लिये–वासनाओं के लिये भीगने वालों की भीगते–भीगते जिन्दगियाँ बीत जातीं हैं, फिर भी उनको शान्ति नहीं मिलती।

एक बाहर का भीगना होता है। घंटे-घडियाल बजाना, ढोल–मजीरे पीटना, तिलक–विलक लगाते रहना, दो पैसे फेंककर मूर्ति के आगे मांगते रहना–यह बाहरी भीगना है। यह बहुत लम्बा रास्ता है। दूसरा होता है भीतर का भीगना। भीतर का भीगना स्वरूप में भीगना है। साधक भीतर में भीगते हैं। भीतर में भीगने में आनन्द ही और है।

आप सब भीतर में भीगने के लिये इधर आते हैं। आप जब इधर आते होंगे तो दूसरे लोग हँसते होंगे–आप पर। आपकी मजाक उड़ाते होंगे। आपकी क्या–महापुरुषों की भी मजाक उड़ाते हैं। लोग उन्हें भी नहीं छोड़ते।

मजाक उड़ाएँगे। यह मनुष्य का स्वभाव है। योगवशिष्ठ में श्री राम को उपदेश करते हुए महर्षि वशिष्ठ कहते हैं, "हे रामजी!

मुझे यह अच्छी प्रकार मालूम है कि जब मैं कहीं से निकलता हूँ, तो लोग मेरे लिये क्या क्या कहते हैं···और मुझ पर हँसते हैं—यह सब मैं जानता हूँ। मगर मैं अपनी करूणावश किसी को कुछ नहीं कहता।" यानि ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष महर्षि वशिष्ठ—भगवान श्रीराम के गुरु जैसे महापुरुषों की भी निंदा किये बगैर लोग नहीं रहे ! श्री रामकृष्ण परमहंस की भी दुष्ट लोग निंदा करते थे। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ जिनकी विश्वव्यापी कीर्ति फैली, उनकी भी लोगों ने आलोचना की, तो हम—आप क्या हैं ? लोगों के हँसने से क्या हम हमारा आनन्द छोड़ देंगे ? हमारे आत्मिक उत्कर्ष का मार्ग हम छोड़ देंगे ?···अपने आराध्य श्री कृष्ण के प्रेम में दीवानी राज रानी मीरा ने क्या अपना रास्ता छोड दिया था ? चैतन्य महाप्रभु प्रभु—प्रेम में उन्मत्त होकर शहर और गाँव की सड़कों पर 'हरि हरि बोल, हरि हरि बोल' कीर्तन करते हुए नाचते थे। इन महापुरुषों ने भीतर अपने आत्मानन्द में भीगते समय लोगों के कहने की परवाह की थी क्या ?

मुस्करा के गम का जिनको जहर पीना आगया,
यह हकीकत है जहाँ में कि उनको जीना आगया।

दूसरे क्या कहते हैं—यह चिंता करके हम अपना आनन्द क्यों खोएँ ? इस दुनियाँ में कोई रागमस्त है, कोई मालमस्त है। हम अपनी अन्दर की मस्ती में ऐसे डूब जाएँ कि हम खुद ही न बचें। यह स्मरण हो न रहे कि मैं साधु हूँ, मैं वकील हूँ, मैं प्रोफेसर हूँ, मैं विद्यार्थी, या मैं अफसर हूँ।

अभी थोड़ी देर पूर्व आपने डांडियाँ—रास खेला था और कीर्तन किया था। उसमें आपको खूब मस्ती आ रही थी। आप अपने आपको भूल गए थे। जब हम अपने आपको थोड़ा भूलते हैं, तो आनन्द आता है। आनन्द कहाँ से आता है ? आनन्द कौन देता है ? आनन्द सन्त महात्मा नहीं देते। आनन्द तो हमारा स्वरूप है। संत तो केवल अपने स्वरूप में एकाग्र होने में हमको मदद करते हैं। मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि मैं आनन्द नहीं देता। मैं केवल वाणी उच्चारता हूँ, तुम्हारे भीतर बैठी हुई क्षुद्र वासनाएं कम होती हैं—दबती हैं, तुम्हारा मन एकाग्र होता है, एकाग्र चित्त में परमात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है और आपको आनन्द आता है।

काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकार ही हमें सताते हैं। ये हमें अशान्त करते हैं। कोई नहीं चाहता कि वह अशान्त हो। इन विकारों पर हम स्वयं कंट्रोल नहीं कर पाते, इसीलिये सन्तों की शरण लेनीं पड़ती है।

काम, क्रोध आदि विकार हमारा स्वभाव नहीं है। आत्मा तो सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है—और शरीर जड़ है। उसमें ये होने का प्रश्न ही नहीं उठता। वस्तुतः वे हैं ही नहीं, परन्तु फिर भी इनसे हम परेशान होते हैं—यही माया है। काम, क्रोध आदि ये विकार इस समय कहाँ दब गए ? इस समय ये किसी को सता रहे हैं क्या ! इस समय—इस वातावरण में ये दबे हुए हैं,

इसीलिये हमें आनन्द का अनुभव हो रहा है। जो इन विकारों को नियन्त्रण में कर सकता है, वह वीर है।

(बादल पुनः धीरे–धीरे बरसने शुरू हो गए हैं।)

वेदान्त का सत्संग सुनना सरल नहीं है। घर से यहाँ आने के लिये रवाना होते हैं, तो लोगों के व्यंग्य सुनने पड़ते हैं। यहाँ आ गए तो अब मेघराज भिगोने लग गए। मेघराज से कह दो कि तुम बाहर से भिगाओ, हम अन्दर से (आत्मानन्द में) भीगेंगे....या तुम्हारी इच्छा हो तो मेघराज को रोक सकते हैं।* बोलो, तो विनती करूँ !

सभी–स्वामीजी ! यह तो बिल्कुल नहीं अखरता है। आज के वातावरण में तो यह चार चाँद लगा रहा है।

स्वामीजी– (विनोद में) आप लोग पक्के भगत दीखते हैं, क्योंकि वर्षा में भीग रहे हैं, फिर भी डटे हुए हैं। एक कलियुगी भगत था। वह तो थोड़े से अभाव से ही बेचैन हो उठता था। एक बार खाने का कुछ अभाव हुआ तो उसने अपने हाथ की माला गुरु के सामने फेंक दी और बोला—

'भूखे भजन न होय गोपाला,
ले तेरी कंठी ले तेरी माला।'

सब हँस पड़ते हैं।

---

* ऐसे कई प्रसङ्ग बने हैं जब स्वामीजी के संकल्प से वर्षा हुई है और बन्द भी हुई है, परन्तु सामान्यतः स्वामीजी कभी ऐसे चमत्कार नहीं दिखाते।

स्वामीजी–अच्छी बात है....फिर आने दो मेघराजा को भी :

राजी हैं हम उसीमें, जिसमें तेरी रजा है।
यहाँ यूँ भी वाहवा है और वूँ भी वाहवा है॥

हम तो शाहों के शाह हैं, परन्तु अज्ञान से हम अपने आप को भूले बैठे हैं। एक राजा था। उसने भांग पी ली कहीं से। भांग के नशे में वह अपने आपको भूल गया और किसी दूसरी ही दुनियाँ में पहुँच गया। वह एक व्यक्ति से पूछने लगा–'भाई, मेरे को राजा से मिलना है। मुझे राजा से मिला दो।' उस व्यक्ति ने देखा कि वह है तो स्वयं राजा ही और कहता है राजा से मिलना है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ ! जरूर कहीं दाल में कुछ काला है। वह बोला–'आप तो स्वयं ही राजा है।' मगर राजा ने उसकी बात अनसुनी करके फिर कहा- 'महाराज ! आप क्यों मजाक करते हैं ! आप तो बस इतनी कृपा करें कि राजा से मिला दें।' अब वह व्यक्ति समझ गया कि महाराज ने कहीं से भांग का नशा कर लिया है। उसने कुछ सोचकर कहा-'ठहरो महाराज ! अभी मिलाता हूँ आपको राजा साहब से।' और उसने कहीं से दही व घी लाकर राजा साहब को पिला दिया। जब इससे राजा साहबका नशा उतर गया तब उस व्यक्ति ने कहा-'अब चलो, आपको राजा साहब से मिला दूँ।' तो राजा चौंक कर बोला 'अरे–अरे, यह क्या करते हो ! यह बात किसी और को कह मत देना !'

सब हँस पड़ते हैं।

तो हम हैं 'शाहों के शाह'। हमको शाहों का शाह बनना नहीं हैं। शाहों के शाह तो हम हैं ही, परन्तु इन विकारों ने, उस अज्ञान रूपी भांग ने हमें दीन बना दिया है। लोभ हमको संग्रह में सुख दिखाता है–काम हमको दारा (स्त्री) में सुख दिखाता है–मद हमको पद और यश में सुख दिखाता है; परन्तु सच्चा सुख इनमें है नहीं। यदि इन दुर्गुणों के वशीभूत होकर हम व्यवहार करते रहे तो ये हमें जन्म–जन्मान्तरों तक भटकाते रहेंगे। राजा तो दो चार घंटे में ही अपने घर आ गया था, परन्तु हम तो सदियों से भटकते आ रहे हैं।

कोई एम.ए. या बी. ए. है। उसे भांग पिलाकर चौथी कक्षा की परीक्षा दिलवाओ। उसमें भी वह फेल हो जायगा। वह पास नहीं हो सकेगा। और एम.ए. या बी. ए. भी वास्तविक ज्ञान नहीं है। यह भी अज्ञान का रूपान्तर है। हमको ज्ञान की भ्रांति होती है। सदियों से हम इसी भ्रांति में चल रहे हैं। जैसे–जैसे अज्ञान हटता है–महापुरुषों के संग से, वैसे–वैसे हमारा आनन्द बढ़ता जाता है। इन्हीं साधकों का कुछ वर्ष पूर्व का जीवन यदि हम देखें और आज के इनके सुधरे हुए निष्कपट सरल जीवन को देखें तो हमें बड़ा आश्चर्य होगा! हमें विश्वास ही नहीं आयेगा कि इन्होंने पहले ऐसे–ऐसे दुष्कर्म भी किये होंगे कभी! इसीलिये कोई कोई कहता है, सांई (स्वामीजी) ने जादू कर दिया है। नहीं ...! सांई ने कोई जादू नहीं किया। सांई ने तो केवल दही

और घी पिलाया है। बाहर के नशे को दूर करने के लिये बाहर का स्थूल दही और घी पिलाते हैं। भीतर के अज्ञान के नशे को दूर करने के लिये भीतर का सूक्ष्म दही और घी पिलाना पड़ता है।

अविचार से हमको सांसारिक पदार्थ आकर्षक लगते हैं। ज्यों-ज्यों विचार रूपी घी और साधना रूपी दही पड़ेगा, त्यों-त्यों जीवन में उत्कर्ष आता जायेगा। भगवान श्री वेदव्यास ने पाँचों विकारों पर विजय पाने के लिये अलग–अलग साधन बताये हैं। परन्तु अंत में कहते हैं कि जो आत्मवेत्ता महापुरुष हैं, जो सदैव इसी तत्व में रम रहे हैं–उनके भक्ति मात्र से पाँचों विकारों पर एक साथ विजय पाई जा सकती है–

जे को अपना दुःख मिटावे,
साध जनों की सेवा पावे।
जे को जनम–मरण ते डरे,
साधजनों की शरणि परे।
जो इच्छे सो ही फल पावे,
साध की संग न विरथा जावे।

—सुखमणी

स्वामीजी की दृष्टि एक कोने में बैठे नये नये साधक बैंक-मैनेजर पर पड़ती है–उनको संकेत करके कहते हैं:

स्वामीजी–वो देखो, आपके पीछे उधर एक बैंक के मैनेजर बैठे हैं। वे पहले एक बार आए और कहने लगे–'महाराज! कई

बाबा देखे और छोड़े।' ये बड़े विचारवान्, बुद्धिमान और समृद्ध भी हैं। मैंने इनको कहा–अरे नहीं, बाबा नहीं देखे, बाबों के शरीर देखे होंगे। यदि कोई वास्तविक बाबा देखा होता तो छूट कर नहीं आ सकते थे। अब ये इधर आते रहते हैं। आना आपके हाथ में है, परन्तु जाना आपके हाथ में नहीं है....।

कहकर स्वामीजी हँस पड़ते हैं। अन्य भक्त भी हँस पड़ते हैं, क्योंकि यह सब भक्तों का निजि अनुभव है कि वे आये किन परिस्थितियों में थे और आकर फिर कैसे स्वामीजी के आत्मिक आकर्षण से साधक बन गए।

स्वामीजी– अपने आपको पहचानना पड़ेगा। जो विकार हमें दीन बनाए हुए हैं, यह समझ लो अच्छी प्रकार से कि वे हमारा स्वभाव नहीं हैं। हमारा आत्मा उनके बीच रहते हुए भी निर्विकार रहता है। उस निर्विकार आत्म–तत्व को जाने बिना हम सच्चे सुख के-सच्चे आनन्द के भागी नहीं बन सकते। एक बार इसको हम अच्छी प्रकार से समझ लें, फिर दृढ़ता से पैर आगे बढावें। फिर कोई भी विघ्न आवे, उसके माथे पर पैर रखकर आगे बढ़ेंगे- ऐसी दृढ़ता लाओ और अपने शाहों के शाह होने का अपने में अनुभव कर लो; फिर कोई भी संसार का दुःख और प्रलोभन हमें प्रभावित नहीं कर सकेगा।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

ॐ

सबको आत्म-भाव से देखो–

मंगलवार

१०-२.७६

स्वामीजी की कुटिया के बाहर भक्त गण सत्संग के लिये बैठे हैं। स्वामीजी अपनी कुटिया में विराजमान हैं। कोई आकर कहता है–

"स्वामीजी ! एक सांप आया है आश्रम में।"

स्वामीजी कुटिया से बाहर आ जाते हैं और पीछे-पीछे सब भक्त गण भी बाहर आ जाते हैं।

आश्रम में सत्संग भवन के सामने करीब ९–१० फीट ऊँचा बड़ का पेड़ है। सभी के देखते–देखते सांप उस बड़ पर चढ़कर लिपट जाता है। सभी उसको घेरकर खड़े हो जाते हैं। स्वामीजी का संकेत पाकर एक साधक दौड़कर दूध ले आता है। एक पात्र में डालकर स्वामीजी उसके मुंह के पास दूध ले जाते हैं। सभी लोग आश्चर्यचकित होकर यह दृश्य देख रहे हैं।

सांप एकदम श्याम वर्ण का लगभग डेढ़ मीटर लम्बा है। उसको देखने मात्र से कोई भी समझ सकता है कि यदि यह किसी को काटे, तो वह पुनः पानी भी नहीं मांगे। परन्तु स्वामीजी बड़े प्रेम से उसके मुंह के पास दूध का पात्र ले जाकर कहते हैं–अरे, पी ले रे। यह दूध तेरे हो लिये है। सांप जैसे कुछ क्षण उस दूध को देखता है, फिर मुंह घुमाकर दूसरी तरफ कर लेता है। वह बड़ को और कसकर लिपट जाता है।

एक-"स्वामीजी, लगता है यह घबड़ा गया है। अन्यथा यह दूध अवश्य पीता।"

स्वामीजी-"सब यहीं पर बैठ जाओ। आज यहीं पर सत्संग कर लेते हैं।"

सभी लोग वहीं भूमि पर बैठ जाते हैं।

लेखक को एकबारगी यह विचार आता है कि सांप स्वामीजी को कहीं काट न ले! फिर तुरंत वह अपने आपको धिक्कारने लगता है कि अरे, तुझे इतना समय हो गया स्वामीजी के चरणों में, फिर भी तू अभी तक उनको समझ नहीं पाया! स्वामीजी तो सर्व-समर्थ हैं। अच्छे-अच्छे दुष्ट स्वभाव वाले लोग भी उनकी एक दृष्टि मात्र से कैसे भोले बन जाते हैं! ऐसे तो कई प्रसंग यहाँ उसने देखे हैं। सांप भी इधर दो-तीन घूमते रहते हैं। परन्तु उसको दूध पिलाने का प्रसंग तो आज ही वह पहली बार देख रहा है।

स्वामीजी-देखो, जिसका अन्तःकरण जितना शुद्ध होता है, उतना ही वह निर्भय होता है। तुम्हारे हृदय के भाव का प्रभाव सामने वाले पर पड़ता है। तुममें यदि इस सर्प के प्रति द्वेषभाव होगा, तो इसमें भी वही द्वेष पैदा हो जायेगा। यदि तुम इसे मित्र-भाव से देखो, यह विचार अपने में दृढ़ रखो कि इसमें भी मैं ही हूँ, यह मेरा ही आत्म-स्वरूप है, तो यह आपको कोई हानि नहीं पहुँचाएगा। तुम यदि इससे डरोगे, तो यह भी आप से डरने लगेगा और घबराहट में तुमको काट भी सकता है।

स्वामीजी सांप को पुचकारने लगते हैं व धीरे-धीरे उसके ऊपर अपने हाथ की थपकी देते हुए कहते हैं:

स्वामीजी-ले, दूध पी ले बच्चू ..... ! फिर कभी ऐसा मौका हाथ नहीं आयेगा।

सब आवाक् होकर कभी सांप को और कभी स्वामीजी को देखते हैं। पहले जो सांप घबराया हुआ लग रहा था, वही अब निर्भय हुआ जान पड़ रहा है। वह धीरे-धीरे अपना मुंह दूध के पास लाया और थोड़ी देर तक उसको निहारते हुए अपनी जीभ निकालता रहा; परन्तु उसने दूध पीने की कोई चेष्टा नहीं की।

एक साधक ने देखा कि सांप चुपचाप लिपटा पड़ा है-चलूँ, मैं भी थोड़ा हाथ लगा कर देखूँ-यह विचार कर ज्योंही वह उसके पास गया तो स्वामीजी ने उसे सचेत करते हुए कहा-"अरे, क्या करता है हवाईजहाज! मरना है क्या तुझे? मुझे देखकर नकल करता है! नकल करने में अकल लगानी पड़ती है, नहीं तो शक्ल बिगड़ जाती है।"

सभी हँस पड़ते हैं स्वामीजी के इस प्रकार बोलने से, साथ ही स्वामीजी भी हँस पड़ते हैं। वह साधक जिसको स्वामीजी विनोद में हवाई जहाज ही कहा करते हैं, एकदम चौंक कर पीछे हट जाता है। स्वामीजी पुनः उसको समझाने के भाव से कहते हैं:

स्वामीजी–"इसके यदि तुम हाथ लगाओगे, तो तुम्हारे भावों के सूक्ष्म परमाणु इसके भावों में भी अन्तर ला देंगे, फिर यह अपना सर्पभाव धारण करके काट भी सकता है। समझे की नहीं ?

इतने में वहाँ एक व्यक्ति फोटोग्राफर को लेकर आता है। फोटोग्राफर तो यह देखकर जैसे नाच उठता है! इतना सुन्दर दृश्य उसने भी पहले कहीं नहीं देखा था कि एक जंगली सांप और एक मनुष्य बिना मंत्र-तंत्र के इतने निकट मित्र-भाव से खड़े हों! उसने तुरन्त अपना कैमरा सेट किया। उधर सांप भी एकदम सजग हो गया है। उसने अपना फन ऊँचा किया और उस कैमरे को देखने लगा–जैसे वह फोटो खिंचवाने के लिये तैयार हुआ हो। कैमरामैन भी कब चूकने वाला था! उसने अब तक कई मनुष्यों के फोटो लिये थे, मगर सांप और मनुष्य का एक-साथ मित्रभाव से खड़ा हुआ पोज नहीं लिया था। खट् से उसने बटन दबाया और अच्छा सा एक संग्रहणीय पोज अपने कैमरे में बन्द कर लिया।

स्वामीजी–(विषधर के मस्तक पर हाथ घुमाते हुए)–अरे, तू भी क्या फोटो खिंचवाने में दूध पीना भूल गया ? ले, पीले दूध!

सांप जैसे स्वामीजी की भाषा समझ रहा हो, उसने अपना फन नीचा किया और दूध में मुंह लगा दिया। खट्–खट्–खट्; फोटो-ग्राफर ने तीन चार और भी दूध पीते हुए सांप के पोज ले लिये।

अब वह श्याम वर्ण भुजङ्ग नीचे उतरने लगा है। नीचे एक छोटा सा गमला पड़ा है, उसमें धीरे-धीरे वह घुस जाता है और कुण्डली मारकर बैठ जाता है। स्वामीजी उसको गमले सहित हाथ में उठा लेते हैं और आशा पूरी करने वाले उस बड़ के पास ले जाते हैं जिसकी कई भक्त लोग श्रद्धा से परिक्रमा करते हैं।

स्वामीजी–अरे, अब तुझे क्या चाहिये ? तुझे जाना नहीं है क्या ? सांप जैसे स्वामीजी का कथन समझ गया था। वह गमले से बाहर आकर बड़ को पकड़ लेता है और उसके सहारे धीरे-धीरे नीचे उतर कर एक तरफ जाने लगता है। जाते हुए उस भयङ्कर विषधर की पूँछ स्वामीजी पकड़ लेते हैं, किन्तु वह कुछ भी विरोध नहीं करता है और बलपूर्वक पूंछ छुड़ाकर निकल जाता है। सब लोग उसके जाने से जमीन पर पड़ी हुई लकीर देखते रह जाते हैं।

लेखक को यह सब देखकर पुस्तकों में पढ़ा हुआ प्राचीन आश्रमों का वर्णन याद आता है। ऐसे आश्रमों में जहाँ तत्ववेत्ता महापुरुषों का वास रहता था और साधक तपस्या व साधना करते थे, उन आश्रमों के आसपास रहने वाले हिंसक प्राणी भी अपना शत्रुभाव भूलकर व्यवहार करते थे। महापुरुषों की तपस्या से वहाँ का वातावरण इतना निर्दोष एवं पवित्र बन जाता था। आज तो उसने कई लोगों के साथ प्रत्यक्ष वह वर्णन सजीव हुआ देखा है।

धन्य है भारत का तत्वज्ञान और धन्य है भारत के ऐसे तत्ववेत्ता महापुरुष! ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

क्या करें कि शीघ्र आत्मज्ञान हो जाए ?–

२-४,७६
शुक्रवार

दिन के ११. ३० बजे हैं।

सत्संग भवन में स्वामीजी अपने आसन पर विराजमान हैं। उनके सम्मुख ही श्रोतागण बैठे हैं। थोड़ी देर से भवन में पूर्णमौन छाया हुआ है। मौन है, परन्तु मौन में भी लगता है सबके मन में हलचल मची हुई है। सभी सोच रहे हैं कि किसी प्रकार यह मौन टूटे और पूज्यश्री के श्रीमुख से कुछ अमृत–वचन श्रवण करने का सौभाग्य मिले। इतने ही में एक साधक (जो वकील है और कुछ संस्थाओं का प्रमुख भी है) प्रश्न करता है :

साधक(हाथजोड़कर)-कई बार कहते हैं कि पुरुषार्थ करने से भगवान मिलते हैं और कई बार कहते हैं कि भगवान अपने भक्तों पर अहैतुकी कृपा करते हैं। तो कितना पुरुषार्थ करें और किन पर यह अहैतुकी कृपा होती है यह गुत्थी कुछ समझ में नहीं आ रही !

स्वामीजी (मुस्कुराते हुए नाथाभाई की तरफ देखकर) बोलो नाथाभाई, इस बारे में कुछ बताओ।

नाथाभाई एडवोकेट हैं और पाटण तालुका के विधायक भी रह चुके हैं। जब से इन्होंने स्वामीजी के दर्शन किये हैं, तब से बहुत प्रभावित हुए हैं और अब तो आश्रम में आते ही रहते हैं।

नाथाभाई (हाथ जोड़कर)–मैं अल्पज्ञ क्या बताऊँ स्वामीजी ! यह तो आप ही कुछ बताएँ, तो हम सबको कुछ लाभ हो।

सब स्वामीजी के मुखारविन्द की ओर उत्सुकता से देखते हैं।

स्वामीजी–ईश्वर बिना पुरुषार्थ के नहीं मिलता और उसे केवल बुद्धि से या अटकल से भी नहीं पा सकते। तुम पुरुषार्थ करो, परन्तु तुम्हारे पुरुषार्थ से वह अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक कैसे वशमें हो सकता है ? वह तो अनन्त शक्ति वाला है। आप कहेंगे, फिर बिना पुरुषार्थ के भी तो नहीं पा सकते !

पुरुषार्थ करते हैं ईश्वर की जो अप्राप्ति की भ्रांति है उसे हटाने के लिये। वह प्राप्त नहीं होता, वह तो सबका अपना आपा है। इसको ऐसे समझो-एक व्यक्ति एक पेड़ के नीचे खड़ा होकर उसके फल तोड़ कर खाना चाहता है। इसके लिए वह उछलता है, कूदता है, परन्तु कद छोटा(ठिंगना) होने से वह फल तक नहीं पहुँच पाता। ऐसे समय में कोई लम्बा व्यक्ति आकर उसका पुरुषार्थ व तीव्र इच्छा देखकर कृपा करके उस फल की डाली को पकड़कर नीचे झुका देता है, तब वह फल उस छोटे कद वाले की पकड़ में आ जाता है और वह खा लेता है। ऐसे ही अहैतुकी कृपा उस जीव पर ढुल पड़ती है। हमारे में इतना सामर्थ्य नहीं कि बुद्धि के बल पर उसे जान लें। जिसको देखने की चाह होती है, उसकी चाह को देखकर वो स्वयं अहैतुकी कृपा करते हैं।

सो जाने जासु देहु जनाही, तुमही जाने तुमही हो जाही।

खियलदास इंजीनीयर– हम ध्यान तो करते हैं परन्तु कभी-कभी निंद्रा आ जाती है और हमको ऐसा ही लगता है कि हम ध्यान में थे। ऐसा भी होता हैं न ?

स्वामीजी–हाँ, ऐसा भी होता है। एक सज्जन हैं। बहुत श्रद्धालु हैं। आठ-आठ, बारह-बारह घंटे वे एक ही आसन पर रहते हैं। उनका अपना मंदिर भी है। उनका साधनाकाल बहुत लम्बा चलता है। वे ध्यान में विचारों से खाली हो जाते हैं। उनका मन लय होजाता है, परन्तु उससे आगे वे नहीं पहुँच पाते। इसके लिये सत्संग और कामिल (समर्थ) गुरु की आवश्यकता होती है।

ऐसे ही एक श्री मणीभाई हैं। उनकी तो ७२–७२ घंटे तक समाधि लगती है। उसका बहुत आनन्द भी आता है उनको। वे मेरे पास डीसा भी आए थे। उनका मन तन्द्रा व योग की निद्रा में आ जाता है। उस दौरान उनको थकावट और भूख-प्यास भी नहीं लगती। वे हमारे पास आते रहते थे। उनके आग्रह से उत्कण्ठेश्वर उनके आश्रम में भी हम गए थे। जब वे समाधि से उतरे, तो मेरे पैर पकड़ कर खूब भाव में आकर रोने लगे।

मन खाली हुआ, विचारों से शून्य हुआ–यह सब जाना किसने ? उसको ढूँढ़ो। जब ध्यान से उठे तो वही पहले वाला राग-द्वेष, शत्रु-मित्र भाव ! जैसे थे वैसे हो गए। यह जेट रास्ता (हवाई जहाज का रास्ता) नहीं है। यह तो एक तरह से लोकल (Local) में लटकने जैसा हुआ। अंतःकरण जब तक रहेगा, विचार तो रहेंगे। वह उससे पृथक् है-यह जानकर उसमें स्थित हुए, तो फिर भले कितने ही विचार आवें-जावें·····।

'कठिन से कठिन काम है आत्म-साक्षात्कार करना और सरल से सरल काम है तो आत्म–साक्षात्कार करना।'

चाय का कप बनाना कठिन है, परन्तु आत्म–साक्षात्कार करना इतना कठिन नहीं है। क्योंकि दूसरा तो सब बाहर है, परन्तु यह तो अपना आपा है। कोई गुजराती है या सिंधी है, उसको मैं इन्सान हूँ-यह जानना सरलमें सरल है, परन्तु बाहर ढूँढने जावेंतो कठिनहै। जहाँ से संकल्प उठा-वह कहाँ से उठा, उसका अधिष्ठान कहाँ है, वहकौन है–उसको जान लो। हर लहर समुद्र की सत्ता से समुद्र में ही उठती है। इसी प्रकार, सारे संकल्प स्वरूप की सत्ता से स्वरूप में ही उठते हैं। उस स्वरूप को जान लो।

साधक—स्वामीजी ! ध्यान किसका करना चाहिये ?

स्वामीजी—किसी का भी हो सकता है। अपने इष्टदेव का करें, साकार उपासना करें। ब्रह्म-ध्यान या आत्मा–विचार भी कर सकते हैं। स्वामी लीलाशाह इसके लिये कई बार कहा करते थे कि किसी को गाँव से यदि दिल्ली जाना है, तो वह पहले अपने घर से किसी टट्टू गाड़ी पर बस तक और बस से रेल्वे स्टेशन तक पहुँचेगा, फिर लोकल पकड़ेगा। परन्तु किसी के पास हवाई जहाज है तो........ वह तो तुरन्त ही दिल्ली पहुँच जायेगा। उसे अधिक समय नहीं लगेगा। ध्यान में भी ऐसा ही है।

दूसरा साधक–स्वामीजी ! कुछ लोग योग के चमत्कार दिखाते हैं। क्या यह ठीक है ?

स्वामीजी–देखो, योग में बहुत चमत्कार है। एक साधक ने त्राटक–योग सिद्ध किया था। उसने कई लोगों के सामने देखते-देखते ७ मन की तिजोरी को बिना छुए एक जगह से दूसरी जगह उठा कर रख दिया। श्रीमद्रायचन्द्र से सम्बंधित वह

साधक था । श्रीमद्‌रायचन्द्रजी को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने उसको बहुत फटकारा कि जिस काम को दो कुली कर सकते हैं, उसमें तुमने इतनी अमुल्य यौगिक शक्ति का प्रयोग क्यों किया ?

ऐसे ही दो साधक मित्र काफी समय से मिले । उसमें से एक ने नाव से नदी पार की, परन्तु दूसरे ने कहा, 'मुझे नाव की आवश्यकता नहीं है। मैं तो ऐसे ही उस किनारे पहुँच जाऊँगा ।' और वह अपने योगबल से पानी पर चलकर दूसरे किनारे पहुँच गया। तब पहले वाले ने उससे कहा–'बारह वर्ष में तुमने २ पैसे ही कमाए हैं । जो काम नाव वाले को दो पैसे देकर हो सकता है, उसको करने के लिये तुमने बारह वर्ष लगा दिये !

योग में ऐसे कई चमत्कार होते हैं, परन्तु आत्म–साक्षात्कार के आगे ये सब तुच्छ चीजें हैं । चमत्कारों में योग की शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये । सहज में ऐसे कई चमत्कार हो जाते हैं; परन्तु साधकों से यही बोला जाता है कि इनकी तरफ ध्यान मत दो; क्योंकि ये साधना मार्ग में विघ्न–रूप बन जातेहैं ।

पंथ कहते हैं, हम कहते हैं वही सही है। ईश्वर प्राप्ति का दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है । तो क्या इन पंथों के बनने से पूर्व भगवान थे ही नहीं और किसीको उनका साक्षात्कार होता ही नहीं था ? वेदान्त कोई पंथ नहीं है । वेदान्त केसरी शेर है । सियार भूंकते रहते है, तभी तक जबतक कि शेर नहीं आ जाता ।

तावद्गर्जंति शास्त्राणिजम्बुका विपिने यथा ।
न गर्जति महा शक्तियाँ वद्वेदान्तकेसरी ॥

वन में जब तक सिंह गर्जता नहीं, तभी तक सियार भूंकते हैं । इसी प्रकार शक्तिशाली वेदान्त रूपी केसरी सिंह की गर्जना नहीं हुई, तभी तक अन्य शास्त्र गूँजते हैं ।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है–श्रेष्ठ साधक के लिये मोक्ष की इच्छा भी बाधक है । फिर भी इस इच्छा को रखना पड़ता है । जैसे एक तालाब की काई आदि गंदगी को दूर करना है तो उसमें मछली डालदो । मछलियाँ बढ़ जावें तो उसमें कछुआ डाल दो, फिर उसे भी हटा दो । ऐसे ही, तामसी और राजसी कर्मों का प्रभाव हटाने के लिये सात्विक कर्म करो, फिर उनको भी हटा दो । इसीलिये श्री कृष्ण अर्जुनको कहते हैं–

'गुणातीतो भव अर्जुनः ।'

आप लोग घर से रवाना होते हो फिर बस पकड़ते हो । बस से उतर कर पगडंडी (कच्चा रास्ता) पकड़ते हो और चलकर आश्रम पहुँचते हो । यहाँ पहुँचकर चलने का भी त्याग कर देते हो, तभी तो सुन पाते हो न सत्संग की बात ? और यदि घर बैठे ही चलने का त्याग कर दो, तो यहाँ पहुँच पाओगे क्या ? (विनोद में) क्यों·····? चोखा (अच्छा) माल है न ?

यह कहकर स्वामीजी हँस पड़ते हैं । एकाग्रचित्त हो सुनते हुए श्रोता भी हँस पड़ते हैं । गंभीर वातावरण में थोड़ी विनोद की लहर छा जाती है ।

स्वामीजी (शिवलाल से)– शिवलाल ! तुम कैसे आए पहली बार सम्पर्क में ? जरा सुनाओ तो !

शिवलाल काका मुस्कुराते हुए सबकी ओर देखकर खड़े होते हैं ।

शिवलाल (हाथ जोड़े हुए)–जब बापू आप ड़ीसा आश्रम में थे, तब कई लोग मेरे पास आकर कहते थे कि ये स्वामीजी बड़े अच्छे हैं; परन्तु मैंने बिल्कुल उधर ध्यान ही नहीं दिया। बस, सेठ की तरह अपनी होटल पर बैठा रहता। एक व्यक्ति तो मेरे पास कई बार आता था और हर बार कहता था कि तुम भी कभी चलो हमारे साथ। उन स्वामीजी का बड़ा मधुर स्वभाव है। प्रसाद भी खूब और पूछ–पूछ कर देते हैं। प्रसाद की बात मेरे को बड़ी अच्छी लगी (प्रसाद की बात कहने का ढंग काका का ऐसा था कि कोई भी हँसे बिना नहीं रह सका)। फिर एक बार मैंने रात को जाकर स्वामीजी के दर्शन किये। उसके बाद से तो अब तक इतने चमत्कार स्वामीजी के देखने में आए हैं मुझे कि उनका वर्णन करना ही बहुत कठिन है।

एक साधक (शिवलाल से)–जरा एक-आध घटना तो बताओ!

शिवलाल–क्या बताऊँ····? मैं उधर आश्रम में जाता था तो सब चीजों पर मेरी बड़ी पैनी दृष्टि रहती थी। मैंने उन दिनों वहाँ देखा कि स्वामीजी कहीं इधर–उधर जाते नहीं, टिफिन भी भोजन का कहीं से आता नहीं; फिर ये क्या खाते होंगे? एक बार इस विचार ने मन में बहुत जोर पकड़ा कि कैसे भी हो, स्वामीजी से पूछें तो सही कि वे क्या खाते हैं? यही विचार करता हुआ मैं आश्रम में आकर सत्संग में बैठा, तो स्वामीजी बोले-'कुछ लोगों के मन में यह बात बार–बार उठती है कि ये स्वामीजी क्या खाते हैं, जरा मालूम करें?' ऐसा कहकर स्वामीजी अन्दर से कुछ मूंगफली व करीब ५०० ग्राम आटा ले आए और सबको

दिखाया। परन्तु वह भी करीब छः महीने से ऐसा ही पड़ा था, और इतना तो मुझे एक ही टाईम में चाहिये। (सब हँसते हैं) .... बस और भी ऐसी ही कई बातों से मैं प्रभावित हुआ और फिर आता रहा।

अभी ड़ीसा से टेकचन्द भाई आए हैं। ये स्वामीजी के पुराने श्रद्धावान भक्तों में से हैं। हाथ में नारीयल और माला लिये हुए वे स्वामीजी की ओर बढ़ रहे हैं।

टेकचन्द भाई स्वामीजी के सम्मुख नारियल रखकर माला गले में डालते हैं। इतने में ही काका मंघनदास हाथ जोड़े हुए खड़े हो जाते हैं। उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह रही है। स्वामीजी उनसे पूछते हैं–'क्या बात है? क्यों रो रहे हो?' तो वे एकाएक बोल नहीं पाते, फिर अपने को संयत करके अवरुद्ध कंठ से बोलते हैं:

मंघनदास — दो दिन से मेरे पेट में बड़ा दर्द हो रहा था। आज सुबह से ही विचार कर रहा था कि कुछ दवा करानी पड़ेगी। बीच–बीच में पेट में जोरों का दर्द उठा। .... मैं बड़ा बेचैन हो गया। इतने में मेरे अन्दर से ही आवाज उठी, 'बेवकूफ! दवा कराने की सोच रहा है! तू आश्रम में इतनी सेवा करता है, वह किस विश्वास से करता है? तुझे स्वामीजी में विश्वास नहीं है? जा, बड़ बादशाह की परिक्रमा कर और वहाँ से थोड़ी मिट्टी लेकर पेट के लगा दे।' ....मैंने ऐसा ही किया।.... तब से दर्द बिल्कुल शान्त हो गया है। ऐसी आपकी कृपा देखकर मैं अपने आप को सम्हाल नहीं सका और ....।

काका मंघनदास रो पड़े यह कहते-कहते। सारे भवन में सन्नाटा छा गया है। स्वामीजी की आँखें बन्द हैं। इस प्रकार की कई घटनाएँ लेखक इधर देख चुका है। कईयों पर स्वामीजी की महती कृपा होती है, परन्तु लेखक ने स्वामीजी को कभी ऐसा कहते नहीं सुना कि मैंने ऐसा किया है अथवा मैं ऐसा करूँगा। वे सदैव यही कहते हैं कि ईश्वर ने ऐसा किया है या मैं ईश्वर से ऐसा करने के लिये प्रार्थना करूँगा तुम्हारे लिये। वह कृपा करेगा तो तुम्हारा हित हो जायगा और इस बार भी वे जो बोले, उसका भावार्थ भी यही था।

धीरे-धीरे स्वामीजी ने आँखें खोली और मंघनदास को बैठने का संकेत करके कहने लगे :

स्वामीजी—योगी देवों का देव होता है। देव तो अपने किये गए पुण्यकर्मों का फल भोगते हैं, जबकि योगी अपने कर्म फलों को अर्पण करके योग करते है। भगवान कहते हैं – 'मुझे भक्त बहुत प्रिय हैं। मैं और भक्त अलग नहीं हैं। यदि अलग करना हो तो मैं शरीर हूँ और वह आत्मा।'

तुम सब लोग कहते हो – बापू (स्वामीजी) ऐसे हैं, बड़े तेजस्वी हैं, उनकी बड़ी–बड़ी आँखें ऐसी तेजपूर्ण लगती हैं, उनकी दाढ़ी ऐसी है, उनकी वाणी ऐसी मधुर है आदि–आदि। परन्तु मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि यह सब मेरे नहीं हैं (पूज्य श्री के शब्दों से स्पष्ट है कि वे देहभाव से नहीं, आत्मभाव से बोल रहे हैं)।

एक गुरु थे। उनके बहुत शिष्य बढ़ गए थे। गुरु वृद्ध हो गए, इसलिये उन्होंने आश्रम की जमीन व अन्य सम्पत्ति आदि सब का विल (Will वसीयतनामा) कर दिया था। केवल उनके पास एक डंडा और करमण्डल शेष बचा था। सभी चाहते थे कि यह उन्हें ही मिले। इसके लिये सभी जैसी गुरुदेव चाहें वैसी सेवा करने को भी तैयार थे। इस विवाद को मिटाने के लिये आखिर गुरुदेव के सामने यह तय हुआ कि जो अपने गुरुदेव के बारे में अच्छी से अच्छी गाथा तैयार करेगा, उसको यह दोनों वस्तुएँ मिलेगी।

सबने अपने–अपने ढंग से गाथा बनाई।

एक ने बनाई–मेरे गुरु साक्षात् ब्रह्म हैं। मेरे गुरु खूब भगवान की पूजा करते हैं; आदि–आदि।

दूसरे ने गाथा बनाई – मेरे गुरु बड़े ज्ञानी हैं। जो उनके पास आते हैं, उन सबका वे दुःख दूर करते हैं। मेरे गुरु सबका हित करते हैं। मेरे गुरु सब पर दया करते हैं; आदि–आदि।

तीसरे ने गाथा बनाई — मेरे गुरु साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। वे सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं, उसका पालन करते हैं और संहार भी करते हैं। मेरे गुरु अन्तर्यामी हैं। वे घट-घट वासी हैं, देवों के देव हैं। मेरे गुरु की महिमा अपरम्पार है; आदि आदि।

तीसरे शिष्य की गाथा अधिक उपाधि वाली होने से सबको अच्छी लगी। सबको वह याद भी जल्दी हो गई। एक शिष्य उसी गाथा वाला भजन जङ्गल में लकड़ी लेने गया वहाँ गाने

लगा। वहाँ एक व्यक्ति चावल छड़ कर रहा था। उसने वह गाथा सुनी तो उससे बोला—मेरी भी एक गाथा लिखकर ले जाओ।

"न गुरु है न शिष्य है, न सृष्टि है न पालन कर्त्ता है, न चेतन है न जड़ है—एक अखण्ड परमात्म—सत्ता ही है। वही अनेक रूप धारण करता दीखता है। उसी में सृष्टि और प्रलय की भ्रान्ति हो रही है।"

उस शिष्य ने वह गाथा लिख ली और आश्रम में जाकर गाने लगा। गुरु ने जब यह सुनी तो वह गाथा बनाने वाले को बुलवा भेजा। जब चावल छड़ने वाला आया तो गुरुजी ने उसको दंड करमण्डल दे दिया और कहा—'तुमने जो समझा है, वही ठीक समझा है, तो उसने जवाब दिया – 'न ठीक है, न बेठीक है।' इससे गुरु बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उससे पूछा कि तुमने यह सब कैसे समझा, तो वह बोला—'महाराज! करीब दस वर्ष पूर्व मैं यहाँ आप के सत्संग में आया था। उसमें जैसा आपने कहा था, वैसा ही मैं करता आ रहा हूँ।'

'मैं गुरु हूँ—यह भाव भी एक बाड़ा है। उसमें भी पतन है। उससे भी परे का विचार करना है। व्यवहार में यह ठीक है, परन्तु तत्व दृष्टि से परमार्थ में सब एक ही है। और सच्चे गुरु भी वे ही हैं—फिर भले ही उनके एक भी शिष्य नहीं हो। ऐसे गुरु किसी को मिल जाय तो उसे फिर कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं है। वे शिष्य को उस परमपद का लाभ करा देते हैं जिसके लिये बड़े—बड़े तपस्वी भी तरसते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

हम हर हाल में मस्त रहें!

९–४–७६

शुक्रवार,

शाम के ६ बजे हैं। सत्संग भवन में स्वामीजी अपने आसन पर विराजमान हैं। श्रोतागण बड़ी तन्मयता से स्वामीजी के अमृत-वचनों का पान कर रहे हैं।

स्वामीजी—

सतर्कता से हर एक व्यवहार करो। सतर्कता क्या है? सतर्कता का तात्पर्य है 'भीतर की समझ से कार्य करो।' संसार में सुख–दुःख के प्रसंग सभी पर आते हैं। अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ सदैव मिलती हैं। हिन्दू हो या मुसलमान, अंग्रेज हो या अमेरिकन, ज्ञानी हो या अज्ञानी, संसारी हो या संन्यासी सबको सब जगह अनुकूलताएँ नहीं मिलती। कोई न कोई प्रतिकूलता हर एक के जीवन में रहेगी ही, परन्तु भीतर की समझ से कार्य लिया जाय तो प्रतिकूलता प्रतिकूलता नहीं रहती, अनुकूलता बन जाती है। जो हुआ है, अच्छा हुआ है; जो हो रहा है, अच्छा हो रहा है और जो होगा वह भी अच्छा ही होगा। उसकी तनिक भी चिन्ता या दुःख नहीं करें। भीतरी समझ से कार्य करते रहें।

दुःख क्यों होता है?

दुःख अपनी ही मूर्खता से होता है। दुःख कहीं नहीं है। हमारे मन ने कुछ मान्यताएँ बना रखी हैं। जब उनके प्रतिकूल कुछ होता है तो दुःख होता है। दुःख होता है, तो समझ लो कि यह मन की मूर्खता है, उसकी गलत पकड़ है।

एक सेठ था। वह किसी न किसी साधु को रोज भोजन कराके फिर भोजन करता था। एक बार एक साधु को जब वह भोजन कराने के निमित्त बुला लाया तो वह बिना हाथ–पैर धोये ही आसन पर बैठ गया। सेठ ने कहा,–"महाराज! हाथ–वाथ धोलें, फिर भोजन करें।" साधु बोला, "मैं तो ऐसे ही भोजन करूँगा, तुम्हें कराना हो तो कराओ।" संतों के व्यवहार विचित्र होते हैं। सामान्य बुद्धि वाले लोग उन्हें नहीं पहचान पाते। सेठ अपने हठ पर अड़ा रहा और बोला, "महाराज! आप भोजन करने के नियम आदि का पालन नहीं करते। आपका भगवान में विश्वास नहीं है। यदि आप हाथ–पैर नहीं धोयेंगे तो मैं भोजन नहीं कराऊँगा।" यह सुनकर साधु उठकर चल पड़ा। उसी रात सेठ को सपने में भगवान ने कहा, 'हे सेठ! उस साधु की उम्र क्या थी?' सेठ ने कहा, "करीब ३४ वर्ष।" पुनः भगवान ने कहा, "इतने वर्षों तक मैंने उसे पाला–पोसा, बड़ा किया और तुम उसको एक दिन भी नहीं सम्हाल सके?"

हम अपनी मान्यता के अनुसार दूसरों को चलाना चाहते हैं। यह हठधर्मी अच्छी नहीं है। यही दुःख का कारण बन जाती है। कोई हमारी बात माने तो भी हमारा है और नहीं

माने तो भी वह हमारा है–ऐसा भाव बनाना चाहिये। वेदांत में कोई पंथ नहीं है। पंथ (वाडे) लोग बना लेते हैं। वाड़ा बनाने से ईश्वर नहीं मिलता है। ईश्वर वाड़ों में बन्द नहीं है। हर एक अपने संस्कारों एवं प्रारब्ध के वशीभूत होकर कार्य करता है। तुम्हारे कहने में वह क्यों चलेगा? इस प्रकार का सोचना हो कि हमारे कहने में चले, मूर्खता है। यह तुम्हारे मन की गाँठ है। उसको खोलना चाहिये। खोलोगे नहीं, तो स्वभाव नहीं बदलेगा, और स्वभाव नहीं बदलेगा, तो फिर दुःख ही हाथ लगेगा।

सत्संग बिना वह गाँठ नहीं खुलती। सत्संग से ही यह समझ आती है कि भला क्या है और बुरा क्या है; नश्वर क्या है और शाश्वत् क्या है, मर्त्य क्या है और अमर क्या है; मन क्या है और बुद्धि क्या है? सत्संग ईश्वर की कृपा से मिलता है। दूसरी चीजें भले ही मिल जाय, परन्तु सत्संग भगवान की अत्यंत कृपा के बिना नहीं मिलता। बिना समझ के सुख में भी दुःखी होंगे। विवेक होगा, समझ होगी, तो दुःख के प्रसंग में भी सुखी होंगे। बिना मूढ़ता के दुःख आ नहीं सकता। अज्ञानता के कारण ही दीखता है दुःख।

मनुष्य चाहता है कि दुःख नहीं आवे, परन्तु इतना चाहते हुए भी अज्ञान नहीं छोड़ना चाहता। अज्ञान के संस्कार उसकी रग–रग में घुस जाते हैं। जब सत्संग की फटकार पड़ेगी तभी उसकी अज्ञान की ग्रंथियाँ खुलेगी। ज्यों–ज्यों अज्ञान की ग्रंथियाँ खुलती जायेगी और ज्यों–ज्यों समझ आती जायेगी, त्यों–त्यों उसके जीवन में सुख और शान्ति बढ़ती जायेगी। सुख कोई आकाश पाताल की चीज नहीं है।

कल हम ग्राम-भारती में थे (गांधी नगर से आगे अमरा पुर गाँव के पास एक बुनियादी तालीम का माध्यमिक विद्यालय है। वहाँ पुरानी आश्रमों की तरह बच्चों को पढ़ाने की व्यवस्था करने का प्रयास किया गया है)। वहाँ लगभग ४००-५०० विद्यार्थी पढ़ते हैं। वहाँ जमीन-जागीर, विद्वान, पढ़े-लिखे सब होते हुए भी उनसे वहाँ के लोगों को लग रहा था कि बिना आध्यात्मिक योग के सब व्यर्थ है। ऐसा हमें उन लोगों से बातचीत करने से पता चला। मनुष्य शान्ति चाहता है, परन्तु जिन्होंने शांति प्राप्त की है, उनके संग द्वारा ही उसे शान्ति मिलती है।

हम कितना ही अच्छा-अच्छा खाएंगे, कितना ही अच्छा-अच्छा पहनेंगे, अपने शरीर को कितना ही सजाएंगे-**आखिर तो सब जलाना ही है**। हम इस शरीर द्वारा इस जीवन में कितना ही अधिक से अधिक भोग भोग लें, परन्तु आखिरी अंजाम (नतीजा) क्या ? सब व्यर्थ। ऑल इन वेन(All in vain). यह तो कोई बुद्धिमानी नहीं है। बुद्धिमानी तो इसमें है कि जीवन में हिला देने वाले प्रसंग आ जावें, पैरों को डगमगाने वाले प्रसंग आ जावें, परन्तु चेहरे पर दुःख की एक शिकन भी नहीं पड़े। हमारा अन्तर विचलित नहीं हो। अन्दर से हम दृढ़ बने रहें। प्रसन्न रहें। सुख हो चाहे दुःख, जो आया है वह जायेगा ही। जो बात गया वह देख लिया, जो हो रहा है वह देख रहे हैं, जो होगा उसको भी देख लेंगे। हम सदैव साक्षी भाव से रहें। हर हाल में हम मस्त रहें।

मम दिल मस्त सदा तुम रहना, आन पड़े सो सहना।
आत्म-नशे में देह भुलाकर साक्षी होकर रहना॥

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

संगति कीजे सन्त की हरे और की व्याधि -

१०-११-७६
बुधवार (मध्याह्न)

अभी अभी थोड़ी देर पूर्व वृन्दावन के एक प्रसिद्ध संत आश्रम में पधारे थे और कुछ अमृतवचन भक्तों को सुनाकर गए हैं। उन्हीं के बारे में सत्संग भवन में कुछ बातचीत चल पड़ी है।

एक भक्त-स्वामीजी! ये आज जो संत यहाँ पधारे थे उन्होंने कहा था, "मेरा तो सुबह से हो गला खराब था, कुछ बोल नहीं सकूँगा ऐसा सोच रहा था, मगर यहाँ के पवित्र वातावरण में न जाने क्या बात हुई कि गला एकदम ठीक होगया है और आपके साथ सत्संग कर सका हूँ।" यह तो कोई चमत्कार ही हुआ है ?

स्वामीजी-इसमें क्या चमत्कार हुआ है? आपके उनको सुनने के संकल्प होंगे, इसलिये उनको बोलना पड़ा।

दूसरा भक्त - स्वामीजी आप कुछ भी कहिये, मगर हमारे लिये तो यह चमत्कार ही हुआ है ?

एक व्यक्ति आकर स्वामीजी के चरण छूता है। स्वामीजी उसीसे प्रश्न करते हैं :

स्वामीजी-सीरूमल ! ये सब कह रहे हैं कि स्वामीजी चमत्कार करते हैं। मैं कभी कुछ करता हूँ ?....तुम्हो बताओ !

सीरूमल–जो, करते तो हैं ही।

उसके इस उत्तर से सभी हँस पड़ते हैं।

सीरूमल — इसमें हँसने को कोई बात नहीं है। मेरा तो अपना अनुभव है इसलिये मानता हूँ, बाकी कोई माने चाहे न माने।

स्वामीजी (हँसकर)–अरे, तू भी इन सब के पक्ष में हो गया है। मैं तो सोच रहा था कि तुम अभी बाहर से आए हो, इसलिये मेरे पक्ष का समर्थन करोगे; मगर तुम तो····

फिर भवन में हँसी गूँज उठती है।

स्वामीजी–अच्छा, हम भी सुने जरा कि तुमने क्या अनुभूतियाँ की हैं!

सीरूमल–स्वामीजी,आपसे क्या छिपा है? (धीरे से) आपको तो सब पता ही है।

स्वामीजी–नहीं–नहीं, मुझे तो कुछ खबर नहीं है कि क्या हुआ है तुम्हारे साथ? अच्छा बोलो!

सीरूमल–मेरी होटल में ढ़ाई मन दूध आता है, सुबह ही सुबह। एक बार नींद में सोया हुआ था तो एकाएक लगा जैसे आप घर पधारे हैं। आपने पूछा–अरे,क्या कर रहा है? इधर आ!

मैं आपके पास आया। आपने मुझे पास में बिठाना चाहा, फिर पूछा कि स्नान किया है? मैने कहा–नहीं। तो आपने कहा-अच्छा, इधर ही बैठे रहो। मैं तो आपको घर में देखकर बहुत गद्गद् हो रहा था कि देखो, स्मामीजी को घर पर पैर घुमाने के लिये बुलाना हो तो कितना कठिन है, स्वामीजी स्वीकार ही नहीं

करते और आज तो स्वयं ही घर पर पधारे हैं। फिर स्वामीजी बोले–'तू यहाँ आराम कर रहा है और उधर होटल में क्या होने वाला है इसकी तुझे कुछ चिन्ता भी है कि नहीं? जा, जल्दी होटल पर जा और जो दूध आया है, वह किसी को मत पिलाना। वह विषैला हो गया है। उसे फिकवा देना।

इतना सुनना था कि मैं तो हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। जागा तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह मैंने कोई सपना देखा है या कोई भ्रम था या वास्तवमें स्वामीजी पधारे थे? उस समय साढ़े चार करीब बजे थे। मैं जल्दी जल्दी कपड़े पहन कर दुकान पर पहुँच गया। वहाँ कुछ दूध गर्म करके चाय आदि बनाकर लोगों को पिलाने की तैयारी की जा रही थी। मैंने वह सब रोक दिया और एक कुत्ते को उसमें से कुछ दूध पिलाया। आधा घंटा भी नहीं बीता था कि वह कुत्ता एक पेड़ के नीचे मरा पड़ा मिला। फिर तो सारा दूध कपड़े से छाना तो उसमें से एक मरी हुई छिपकली मिली। उसीके जहर का इतना असर था। वह सारा दूध मैंने फिंकवा दिया। यदि ऐसी स्वामीजी की कृपा नहीं होती तो उस दिन मेरे दोनों हाथों में लोहे के कंगन (हथकड़ियाँ) होते।

भवन में पूर्ण शान्ति है। स्वामीजी भवन के अन्दर खुलने वाली जिस खिड़की के पीछे पाट पर विराजमान् है उसके दरवाजे उन्होंने थोड़ी देर एकान्त सेवन के लिये बन्द कर दिये हैं। इसलिये सीरूमल और भी निश्चिंत होकर अन्य लोगों की ओर देखते हुये बोले:

सीरूमल—ऐसी एक नहीं, कई घटनाएँ मेरे साथ घटी हैं। मेरी होटल में एक नौकर जो दूध गर्म करता है, उसे मिर्गी जैसी कोई बिमारी थी। वह दूध गर्म करते-करते कभी-कभी अचेत होकर दूध पर ही गिर जाता था। इस प्रकार दो बार वह दूध से जल गया था। उसे मैं स्वामीजी के पास लाया। स्वामीजी का उसे कुछ आशीर्वाद हो गया। अब कई महीने बीत गए, मगर एक बार भी उसके बाद दूध से जलने की नौबत नहीं आई। उसकी मिर्गी की बिमारी अब ठीक हो गई है।

मेरे भाई की बच्ची को भी ऐसी ही बिमारी थी। उसे लेकर उसकी माँ यहाँ आश्रम में आई थी दो-तीन बार। परन्तु स्वामीजी ने उसे कुछ भी नहीं बताया।····एक बार क्या हुआ कि उसकी माँ को सपना आया। सपने में स्वामीजी ने दर्शन देकर कहा कि पूजा की जगह पर ४० दिन दीपक जलाना। सुबह उसने मेरे को कहा कि स्वामी जी ने ऐसा ऐसा करने को सपने में मुझे बताया है, ऐसा करें कि नहीं? मैंने उससे कहा-इसमें देरी करने की आवश्यकता ही नहीं है। तुरंत जैसा बताया है, आज से ही करना शुरू कर दो। उस दिन से उसने दीपक जलाना शुरू कर दिया। अब वह बच्ची बिल्कुल ठीक है।

(भवन में सभी सीरूमल के अनुभव गौर से सुन रहें हैं।)

मेरी होटल पहले ठीक नहीं चलती थी। कुछ हजार का कर्जा भी था ऊपर। होटल के बाहर खूब गुण्डा-गर्दी व झगड़े—फिसाद चलते थे। होटल के कई सरकारी केस आदि भी बन गए थे। मैं

तो बड़ा निराश हो गया था। एक बार मैंने सुना कि आसूमल नाम के जेठानन्द के भाई जो हैं, वे करीब ७ वर्ष की तपस्या करके संत बनकर लौटे हैं और मोटेरा गाँव के पास में साबरमती नदी के किनारे बने हुए आश्रम में वेदान्त पर सत्सग करते हैं, तो मेरी इच्छा उनके दर्शन करने की हुई। फिर मैं पूछते-पूछते इधर आया, तो जो आत्मिक शांति मेरे को मिली वो मैं ही जानता हूँ। अब स्वामीजी की कृपा से जो सरकारी केस मुझ पर थे, उन सबका फैसला मेरे पक्ष में हो चुका है। सब कर्ज़ा मेरा उतर गया है। दुकान के बाहर की सारी गुण्डा-गर्दी खत्म हो गई है। स्वामीजी ने सत्संग में एक बार कहा था कि जो भगवान के रास्ते चल पड़ते हैं, उनकी समस्याएँ अपने आप हल होती जाती हैं। अब स्वामीजी के बताए अनुसार मैं ध्यान-भजन करता हूँ। मेरे कई आर्थिक, पारीवारिक, सामाजिक—सभी प्रकार के दुःसह्य कष्ट स्वामीजी की कृपा से दूर हो चुके हैं और·····

सीरूमल और कुछ बोलते कि स्वामीजी खिड़की खोल देते हैं। सभी 'सत्गुरु देव की जय' बोलते हैं।

स्वामीजी - क्या कह रहा है सीरुमल? आप लोग इसके कहने में मत आना।....काफी समय हो गया। देखो, कितने दूर—दूर से लोग आये हैं और आप लोग यों ही समय गँवा रहे हो....। कोई सत्संग की बात करो।

सभी चुप हैं। स्वामीजी ने पुनः एक बार भवन में चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, फिर बोले :

स्वामीजी–देखो...., दुःख नाम की वस्तु कहीं है ही नहीं। अज्ञान के कारण ही हम दुःखी होते हैं। वस्तुतः आनन्द का स्रोत हमारे ही अन्दर हमारा अपना आप है, हमारा ही आत्मदेव है–उसकी ओर कोई देखता नहीं और—

कोई दौड़े द्वारिका, कोई काशी जाही।
कोई मथुरा को चले, साहिब घट ही माही॥

हम अपने आपको जानते नहीं, अपनी शक्ति पहचानते नहीं, इसलिये अपने को दीन-हीन-पतित मानते हैं और दूसरों के आगे अन्यान्य देवी-देवताओं के आगे हाथ पसारते रहते हैं। वस्तुतः तो आनन्द का भण्डार चेतनस्वरूप हमारा आत्मदेव–हमारा अपना आप है। हमें किसी बाहर के आनन्द की जरूरत ही नहीं है, मगर हम उसे जानने का प्रयास नहीं करते। सच्चे सन्त हमें छोटी–मोटी नश्वर वस्तुएं नहीं देना चाहते, मगर हमें उन्हीं में सुख की भ्रान्ति होती है; अतः प्रारंभ में वे ऐसी कुछ वस्तुएँ प्राप्त करा देते है, वे ही हमें चमत्कार प्रतीत होती हैं। परन्तु हमें जब पूर्ण श्रद्धा उनमें हो जाती है और हम उन्हें अपना समर्पण करते हैं, तो वे हमें उस शाश्वत् को पाने का–उसे जानने का रास्ता बता देते हैं जिसको जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। जहाँ दुःख का नाम नहीं है। जहाँ आनन्द ही आनन्द है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!